हिन्दी-गौरव-ग्रंथमाला—६०वाँ ग्रंथ

मुक्ति का रहस्य

लेखक

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र

प्रकाशक

साहित्य-भवन-लिमिटेड,

प्रयाग।

द्वितीय संस्करण]

[मूल्य [illegible] २)

मैं बुद्धिवादी क्यों हूँ ?

'राक्षस का मंदिर' लिखने के बाद मुझे यह नाटक 'मुक्ति का रहस्य' लिखना अनिवार्य हो उठा—कुछ तो इसलिये कि उस नाटक में जीवन के जिस पहलू पर मैंने प्रकाश फेंका था—सदाचार और परंपरा निर्वाह की जिन रूढ़ियों की ओर मैंने संकेत किया था—सब ओर से सही होने पर भी उनमें इतना ज़हर और इतना अनुताप था कि कुछ लोग उसे आसानी के साथ पचा नहीं सके। जिन चीजों के लोग अभ्यस्त नहीं थे, जिन समस्याओं की ओर से आँखें बंद रखना ही लोग पसंद करते थे, वे अब एक झटके में ही उनके सामने आगईं। 'राक्षस का मंदिर' को पढ़कर कुछ मित्रों ने समझा कि मैं सदाचार या दुराचार, ईश्वरवाद या अनीश्वरवाद अथवा दूसरे शब्दों में जीवन और जगत की सभी बातों को बुद्धिवाद और तर्क की सूखी कसौटी पर रखकर अपनी लेखनी से समाज की भयंकर हानि करना चाहता हूँ।

इस संबंध मे मैं कुछ विशेष नही कहना चाहता। मेरा यह निश्चित विचार है कि सदाचार या दुराचार, ईश्वरवाद या अनीश्वरवाद के सिद्धांत विवेक और इतिहास की कसौटी पर सदैव एक नहीं अनेक रूप में देख पड़े हैं। भिन्न-भिन्न काल और भिन्न-भिन्न देशों में इन चीज़ों का कोई एक निश्चित रूप नहीं रहा। आज दिन सदाचार का जो रूप है, बीते ज़माने मे वह सब से बड़ा दुराचार था और भविष्य में सदाचार का जो रूप होगा आज दिन उसकी कल्पना भी पंकिल समझी जा सकती है। आँख मूँद कर स्वीकार कर देने से तो श्रेयस्कर है आँख खोलकर अस्वीकार कर देना। आज दिन जिसे हम बुद्धिवाद या बौद्धिक मीमांसा कहते हैं उसके मूल में यही धारणा काम कर रही है। स्वीकार अथवा अस्वीकार कर देने में ही किसी समस्या का अंत नहीं होता। जो है

अवश्य रहेगा। हम मानें या न मानें। हमारे स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का आधार अंधविश्वास या परंपरागत रूढ़ियों का निर्वाह न होकर हमारी आत्मा की, हमारे व्यक्तित्व की, अभिव्यक्ति होनी चाहिये। हमारा विवेक इतना जागरूक होना चाहिये कि हम जीवन की ऊपरी सतह को उठाकर देखें वहाँ चिरंतन क्या है ? चिरंतन। सब कुछ चिरतन। स्त्री और पुरुष का चिरंतन, सदाचार और धर्म का चिरतन, जीवन और मरण का चिरंतन—चिरंतन विश्व का चिरंतन विधान। ईश्वर के विषय में 'हाँ या नहीं' पर्याप्त नहीं हो सकता। उसका होना या न होना—हमारे जीवन या व्यक्तित्व में क्या उलट फेर करता है ? वह भावना गम्य है या बुद्धिगम्य ? शाब्दिक प्रार्थना या विधिवत पूजा का मतलब क्या है ? क्या हम से अलग उसकी कोई प्रथक सत्ता है ? यदि हम उसकी प्रार्थना या पूजा न करें तो क्या वह हमसे रुष्ट हो जाएगा ? हमको दड देने की व्यवस्था करेगा ? "अगर हां" तो क्या उसके उपकरण भी वही हैं—जो मनुष्य के हैं ? मानवी विकारों की सर्दी गर्मी से उसे भी छुट्टी नहीं ? वह भय करने की वस्तु है या प्रेम करने की ? बुद्धिवाद ईश्वर संबंधी इन समस्याओं की मीमांसा करना चाहता है। इसी लिये साधारण समझ के जीव उसमें अविश्वास या नास्तिकता की झलक देख पाते हैं। मेरा अपना विश्वास तो यह है कि बुद्धिवाद स्वतः अनंत विश्वास है। उसमें भ्रम और मिथ्या को स्थान नहीं। बुद्धिवादी ईश्वर की सत्ता में अपनी सत्ता और अपनी सत्ता में ईश्वर की सत्ता देखता है, वह उसे अपने से कोई प्रथक तथ्य नहीं मानता। वह उसकी उपासना इस लिये नहीं करता कि उसकी प्रार्थना या पूजा से नरक की यातनाओं से छुट्टी मिल जायेगी। बुद्धिवादी व्यक्तिवादी भी हो सकता है। उसका स्वतंत्र और पूर्ण विकसित व्यक्तित्व, नरक और स्वर्ग की कहानी सुनता भी है और नहीं भी सुनता—किसी भी दशा में उसे निर्लिप्त या निर्बंध रहना है—जीवन और जगत के केवल बाहरी विधि-विधान उस पर शासन नहीं कर सकते। जिस तरह पौदे सूर्य से पोषण पाने के लिये प्रार्थना नहीं

करते, उसी तरह दीर्घ जीवन या सुख के उपयोग के लिये बुद्धिवादी ईश्वर से प्रार्थना नहीं करता। उसकी पूजा या उपासना घंटे दो घंटे साँझ या सवेरे की नहीं होती, उसकी प्रक्रिया उसके हृदय में प्रतिक्षण और प्रतिमुहूर्त चलती रहती है। इसलिये कि उसका जीवन तो विवेक और प्रकाश का है अंधविश्वास या परंपरा निर्वाह का नहीं। उसे अपना रास्ता मालूम है इसलिये वह चलता रहता है—अंधकार में टटोलना या इधर से उधर हो जाना उसके लिये सम्भव नहीं। ईश्वर उसके लिये प्रेम करने की चीज़ है—डरने की नहीं। इसी लिये ईश्वर संबंधी प्रचलित धारणाओं के साथ वह कभी-कभी ठिठोली कर बैठता है। लोग कहते हैं—वह नास्तिक है।

व्यक्तिगत सदाचार या सामाजिक नीति-निर्वाह के संबंध में भी बुद्धिवादी कुछ इसी तरह की स्वतन्त्रता से काम लेता है। सचाई जो है—जिस रूप में है उसे तो वह स्वीकार कर लेता है, लेकिन उस पर कितने बेठन चढ़े हैं—उसे कितने कपड़े और गहने पहनाए गए हैं—वह कितनी जञ्जीरों से बाँधी गयी है इन बातों को वह स्वीकार नहीं कर सकता। स्त्री और पुरुष इस विश्व के दो पहलू हैं—वे एक होते हैं—प्रकृति के निश्चित नियमों के अनुसार, प्रकृति की निश्चित प्रणाली की रक्षा और प्रचार के लिये। उसे हम संतानोत्पत्ति नवजनन या प्रजायै गृहमेधिनाम् जो मन में आए कह लें—सत्य यही है। स्त्री और पुरुष के सम्मिलन में "नूतन सृष्टि" प्रकृति की यही शक्ति या समस्या, प्रधान काम करती है। इस संबंध का सब से बड़ा आकर्षण तब उत्पन्न होता है जब स्त्री और पुरुष दोनों प्रजनन की शक्तियों से भरपूर होते हैं—उस समय वे दोनों साथ-साथ या समीप रहना चाहते हैं—प्रकृति के खिलौने प्रकृति की सर्वव्यापिनी इच्छाशक्ति में अपने को भूल जाते हैं—इस भूल जाने की क्रिया को संसार में एक सुंदर नाम प्रेम या प्रणय दे दिया गया है। इस प्रेम या प्रणय के लिये बड़े बड़े अनर्थ होते हैं, विवाह के भिन्न-भिन्न रूप, बंधन और कर्तव्य की मिथ्या भावनाएँ। प्रकृति के गर्भ से

प्रेम की बाढ़ आती है और चली जाती है—लेकिन अपने पीछे जो कीचड और दल दल छोड जाती है—मनुष्य की सारी ज़िंदगी उसी में फंसी रहती है। स्त्री और पुरुष के आकर्षण और सम्मिलन में जहां तक प्रकृति का चिरंतन तथ्य है वहाँ तक तो बुद्धिवादी कोई एतराज़ नहीं करता लेकिन जहाँ तक ऊपरी आडम्बर और ढकोसले हैं—प्रियतम और प्रेयसी की रंगीन दुनिया और रंगीन स्वर्ग के सपने हैं—थोड़ी देर के वियोग या मान में मरने जीने की जो परिपाटी है—बुद्धिवादी इन बातों पर हँस पडता है—हँस पड़ता है। अब उसके हँसने का यह मतलब लगाया जाता है कि वह सदाचार का कायल नहीं।

यह सब मैंने इस लिये लिख दिया है कि 'संन्यासी' और 'राक्षस का मंदिर' लिख चुकने के बाद मैं इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि मेरी प्रकृति बुद्धिवाद की ओर हो चली है। बुद्धिवाद किसी तरह का हो—किसी कोटि का हो समाज या साहित्य की हानि नहीं कर सकता। बुद्धिवाद में शूगर कोटेड कुनैन की व्यवस्था है ही नहीं। वह तो तीक्ष्ण सत्य है। उसका घाव गहरा तो होता है लेकिन अङ्ग-भङ्ग करने के लिये नहीं, मवाद निकालने के लिये—हमारी, प्रसुप्त चेतना को जाग्रत कर हमारे जीवन में नवीन जीवन और नवीन स्फूर्ति पैदा करने के लिये। योगियों का मत है कि विचार की श्रृंखला अनंत आकाश में क्षोभ और कंपन पैदा करती है—बुद्धिवाद स्वतंत्र विचार की स्वतंत्र धारा है—वह जीवन का अनंत वेग और अनंत प्रकाश है। अगर सयोग से कला के मूल में बुद्धिवाद की धारणा हुई तो कला को एक प्रकार का अक्षय आधार मिल जाता है—एक प्रकार का ऐसा आधार जिसमे मनुष्य और उसके अनंत वातावरण को हिला देने की ताक़त है। हाँ हिला देने की—और इस हिलने में केवल मनुष्य के मनोवेग या अस्थायी लालसाएँ हीं नहीं हिलतीं, बल्कि उसमे वह सब जो अनश्वर और अनादि है—एक साथ ही हिल उठता है—उसकी चेतना क्षुब्ध होकर उसके चारों ओर फैल जाती है—जीवन का कारागार खुल जाता है—वह अपनी सीमा का

अतिक्रमण कर अपने से बहुत ऊँचे पहुँच जाता है, यही बुद्धिवाद है; यही कला है।

इन दिनों हमारे समालोचक साहित्य या कला के भीतर सब से पहले यह खोजने लगते हैं कि इन चीज़ों में लोकहित का उपदेश या सदाचार की व्याख्या कहाँ और किस रूप में हुई है। सदाचार का नाम लेकर कला के विषय में इस तरह के जीव बहुत कुछ कह जाते हैं—हालां कि सदाचार का नाम भी ये इसीलिये लेते हैं कि इन्हें कला के विषय में कहना तो आता नहीं। अब कुछ न कुछ तो कहना होगा ही। इसीलिये सदाचार की बात चलती है—सत्य बोलो, चोरी न करो, ईश्वर की पूजा करो—इसी तरह की बातें कुछ इधर-उधर कर लंबे शब्दों और लंबे वाक्यों में कही जाती हैं। लेकिन इन बातों से कला का संबंध? कलाकार इस तरह का उपदेशक तो नहीं है? वह जो कुछ भी कहता है या कहना चाहता है—उसके निजी प्रयोग की बातें होती हैं। क्या होना चाहिए या क्या नहीं होना चाहिए? इन बातों का सवाल तो यहाँ नहीं उठता। यहाँ तो जो है, है। कला जो वास्तव में कला है इस तरह के नियमों से परे की चीज़ है। वह तो अनंत के इस पार से उस पार होने वाले धूमकेतु की तरह है। संभव है उसका वेग उपयोगी हो, यह भी संभव है कि उसमें किसी तरह की प्रत्यक्ष उपयोगिता न हो—यहाँ तक कि विश्व की प्रचलित परिपाटियों में वह हानिकर भी हो उठे। लेकिन वह वेग है—प्रवाह और अग्नि है। वह स्वर्ग से उतरता हुआ प्रकाश है और इसीलिये पवित्र है, इसीलिए उपयोगी है। वह उस सूर्य की तरह है जो न सदाचारी है और न दुराचारी, न नास्तिक है और न आस्तिक। वह वह है—जो है। उसका काम है विस्तार के अंधकार को प्रकाशित कर देना। और यही काम कला है। जीवन का भग्नावशेष कला के पर्दे में छिपा रहता है। इसलिये यह अनंत सहानुभूति है जिसकी एक-एक नज़र में कल्याण की दुनिया बसती चलती है, लेकिन तब जब उस कला का आधार बौद्धिक विवेक और जागरण

होता है, व्यक्तिगत मनोवेगों का रुदन, ज्वर और सन्निपात नहीं—जब सारे संसार का दुख कलाकार का दुख और सारे संसार का सुख कलाकार का सुख होता है—जब जीवन की नदी उसके रक्त से लाल हो उठती है—जब उसकी अपनी आत्मा विश्व की आत्मा में मिलकर लय हो जाती है। आज के अधिकांश कलाकार जब अपने काँपते हुए हाथ और लालसा से जर्जरित आत्मा के सहारे कला का निर्माण करने चलते हैं—तब हँसने मे और रोने में, जीने में और मरने में, सोने में और जागने में अपने सुंदर शब्द और सुंदर वाक्य ख़तम कर डालते हैं और कला के मंदिर के नाम पर जिस इमारत का निर्माण करते हैं उससे, अतृप्त वासनाओं और नग्न मनोवेगों की शराब चलती रहती है—फल यह होता है कि चेतना यदि सदैव के लिये नहीं तो बहुत दिनों के लिये सो जाती है। विचारों की कमी के कारण इन्हें हँसना खूब आता है और हँसते ही हँसते लोगों में ये उन बीमारियों को पैदा कर देते हैं जिन्हें हम कह सकते है—प्रयत्न की ओर से भय, उपभोग की ओर आँख मूद कर दौड़ना, वासनामय हृदय और विचार, उनकी संकीर्ण मनुष्यता—वह सब जो उनके जीवन बल को पीछे खींचता है जो उनकी कर्तृत्व शक्ति को मार डालता है। अफीम के नशे में वे उनके मस्तिष्क को अधमरा कर देते हैं, फिर तो उनको मालूम रहता है कि उसके बाद ही मृत्यु है, लेकिन वे इसे मानते नहीं। लेकिन मुझे तो यही कहना है कि जहाँ मृत्यु है, वहाँ कला नहीं। कला तो जीवन का वसन्त है। सत्य की ओर से आँखें मूंद कर उपभोग की ओर दौड़ना आनंद को और दूर कर देता है। लेकिन यहां तो सत्य और आनंद दोनों को छोड़ कर, दुनियाँ उपभोग की ओर बढ़ रही है—और इसका सब से बड़ा साधन हो रहा है कला का व्यापार। यह चाहे और जो कुछ हो लेकिन कला तो नहीं है। केवल कला या साहित्य के ही क्षेत्र में नहीं, उपभोग की यह भावना समाज-सेवा या सुधार के क्षेत्र मे भी काम कर रही है। आज के सुधारक या समाज सेवक विचित्र प्रकार के विनोदी प्राणी हैं— वह जो कुछ भी करते हैं सिर्फ तबियत ख़ुश करने

के लिये, अपनी क्षमता के प्रदर्शन के लिये। जीवन की गहरी तह तक पहुँचने का प्रयत्न तो दूसरी बात है, वे तो एक बार आँख खोल कर ईमानदारी के साथ उसकी ओर देखते भी नही। सदाचार के नाम पर जितना शोर ये मचाया करते हैं, किसी तरह भी उस सदाचार से भिन्न नहीं होता जिसकी शिक्षा छोटे दर्जे के विद्यार्थियों को विद्यालयों में दी जाती है। कला और साहित्य में भी इस तरह के व्यक्ति वही सदाचार खोजते हैं। विस्तृत दृष्टिकोण और सक्षोभ्य हृदय से विचार करने का अवसर तो उन्हे मिलता नहीं, इसलिये कला और साहित्य में जहाँ कहीं जीवन की भीतरी विभूतियों का उद्घाटन होता है या विराट जीवन का निर्माण होता है, ये घबड़ा उठते हैं। उसकी धारणा भी इन्हें असह्य हो उठती है। इब्सन ने कहा था—"जिसे अपनी कला में जीवित रहना है, उसके भीतर कुछ और होना चाहिए, उसको साधारण प्रतिभा से कुछ विशेष व्यापक भावनाएँ और व्यापक शोक, जोकि उसके जीवन को भरकर एक ओर घुमा दे। अन्यथा वह सृष्टि तो नहीं कर सकता—हाँ पुस्तकें लिखता रहेगा।" कला के मूल मे जब तक जीवन की व्यापक भावना नहीं रहती वह पूरी भी नही हो पाती। कला की सफलता जीवन को पकड़ लेने मे—उसमे मिल जाने में है, उससे विद्रोह करने में नही।

मैं बुद्धिवादी क्यों हूँ ? इस सबध में कहा तो बहुत कुछ जा सकता है, लेकिन मै उतना ही कहूँगा जितने मे कि प्रस्तुत नाटक की भूमिका का काम भी चल जाय और मेरे सबध में पाठकों के हृदय में मिथ्या धारणाएँ भी न उत्पन्न हों। मिथ्या धारणाओं की बात मै इसलिये कह रहा हूँ कि 'सन्यासी' और 'राक्षस का मदिर' की आलोचना करते समय एक आलोचक ने लिख दिया था "पर यदि मिश्र जी भी अनीश्वर-वाद की ओर बढ़ रहे हों तो दूसरी बात है" इन्ही की देखा-देखी कुछ और सज्जनों ने भी ऐसी-ही बातें कुछ हेर फेर के साथ कह दी थीं। ईश्वर सबंधी मेरे जो विचार हैं, उन्हे मैं अपने ही तक रखना चाहता हूँ—इसलिये कि उन विचारों का सबंध केवल मेरे व्यक्तित्व और मेरी

आत्मा से है—उनके भीतर मेरा निजत्व इस हद तक व्याप्त हो चुका है कि उनका अलग करना भी मेरे लिये एक कठिन काम होगा। इसके अतिरिक्त ईश्वर के सबंध में बहस या तर्क करना भी मेरी समझ में नास्तिकता या उससे कहीं बुरी संस्कार हीनता है। मैं नास्तिक हूँ या आस्तिक मेरे कहने से नहीं बनेगा। इस संबंध में मैं अपने अतर्जगत से कुछ पंक्तिया उद्धृत कर देता हूँ, इस आशा में कि सभव है इन पक्तियों से मेरी उस मित्र-मण्डली को मेरी धार्मिक धारणा का पता चल सके—जिसने कि हँसते-हँसते नास्तिक बना कर मुझे एकदम जीवन-मुक्त कर देना चाहा था।

"यह उपासना कभी न बाहर होवे अतस्तल की—
नहीं समायेगी अंतिम सीमा में भी इस थल की।
जो कुछ आकर स्वर्ग बना है इस जगती में मेरा—
इस उपासना ने ही उसको है चिर दिन से घेरा॥

और—

जिसकी पूजा में ये मेरे बीत चुके दिन इतने—
आज अयाचित वर देने आया वह मुझको कितने।
नहीं चाहता मैं वर लेकर तजना अपने मनसे—
उस अनादि पूजा को उलझी रहे सतत जीवन से॥

कुछ और आगे बढ़ कर—

जीवन सागर के उस तट पर अपने सुंदर जगकी—
सृष्टि अनोखी की है तूने जहाँ न रेखा मग की।
नीचे सिंधु भर रहा आहें हँसते नखत गगन में—
सब से दूर जल रहा दीपक तेरे भव्य-भवन में॥

अथवा मेरे तपोवन से—

विश्व-विभव, अतर्विभूति, उत्सर्ग मिलन को मेरे—
कब तक चलते और रहेंगे जग के सपने घेरे?

उतर न आओ तुम किरनों से होकर जग के स्वामी—
मैं चल पडूं, भुला जीवन की ममता अंतर्यामी !

मेरे कृपालु मित्रों को मेरी ज़िंदगी की गतिविधि से या मेरे हृदय के संगीत से (जिसका थोडा बहुत आभास इन ऊपर की पंक्तियों से मिल सकता है) इस बात का पता लगा लेना चाहिये कि मैं नास्तिक हूँ या आस्तिक। सच बात तो यह है कि उन्हें इसके पता लगाने की भी कोई ज़रूरत नहीं है। उसका पता लगाना या पता लगाने की कोशिश करना भी एक प्रकार का अपराध होगा। इसलिये कि वह सत्य तो मन और वचन से परे की वस्तु है, उसकी पहचान तो होती है आत्मानंद या अनुभूति से—

यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दो ब्रह्मणो विद्वान न बिभेति कदाचन।

और उसके बाद मनुष्य भय और संशय से निवृत हो जाता है। धार्मिक विश्वास का मूल जैसा कि लोगों को भ्रम है, बाहरी व्यवस्था में नहीं है और न तो इस बात में है कि हमारे आस-पास लोग किस देवी-देव की पूजा करते हैं—कौन-कौन व्रत रखते हैं या किस विधि से दान करते हैं। मेरे मस्तिष्क और मन में शायद कोई ऐसी बात है जोकि मुझे धर्म की प्रदर्शिनी के भी भीतर पैर नहीं रखने देती। भिन्न-भिन्न धर्मों में उपासना की जो प्रचलित प्रणालियां हैं—उन्हें मैं discipline केवल नियमन कह सकता हूँ—साधारण लोगों की दुनियादारी में इन बातों से लाभ हो सकता है—लेकिन जहाँ व्यक्तिवाद का यह अटल सिद्धान्त आ पडता है "मैं स्वयं अपनी कोटि का हूँ" वहाँ धर्म और ईश्वर की भावना भी व्यक्ति की ज़िम्मेदारी पर ही छोड़ देनी चाहिए। धर्म का निर्णय किसी विशेष मत की मौन स्वीकृति या जन्म और जाति की मर्यादा से नहीं हो सकता। ऐसा करना तो जान बूझ कर आध्यात्मिक कारागार बनाना होगा। धार्मिक संस्कृति का सामुहिक रूप महत्व उनके लिये होता है जिनकी कल्पना स्वतंत्र व्यक्तित्व या

स्वतत्र चितन की ओर नही पहुँचती—जिनका अपना कोई रास्ता नही होता—जिनके विवेक का अत इसी मे है "जिधर सब चलेंगे उधर हम भी"। सच्चा धर्म और सच्चा प्रकाश तो वह दशा है—जहा पहुँच जाने पर अधर्म या अधकार से फिर भेंट न हो। आत्म अनुभूति की वह दशा—जहा सुख, दुख, प्रेम, घृणा, प्रकाश, अधकार या जीवन और मृत्यु का भेद मिट जाता है—मनुष्य द्वैत की माया से निकल जाता है। कहीं पढ़ने मे आया था—हमारी जातीय सस्कृति का शायद सुनहला सवेरा था। कोई ब्राह्मण अपनी तपस्या मे बहुत दिनों से लीन था—भूख, प्यास, इच्छाएँ, वासनाएँ एक एक कर सब छूट चुकी थी। जिस किसी ने भी देखा—ब्राह्मण देख पड़ा, जैसे तपस्या का साकार स्वरूप। देवता विस्मित हो उठे, साधक सिहर उठे। अप्सराओं का शृंगार फीका पड़ गया। माया के फदे शायद टूट गये। लेकिन ब्राह्मण चाहता क्या था? मुक्ति? नहीं। तब? दिग्विजय। ब्राह्मण का अहकार जाग उठा। उसने सोचा त्रिलोक में उससे बड़ा तपस्वी कोई नही? उसने असाध्य साध्य किया। उसके आगे किसी की गति नहीं। ब्राह्मण का अहङ्कार उग्र होता गया। उसे देख पडा जैसे उसके तप के तेज से सूर्य का प्रकाश मद पड़ रहा है, वायु की गति बद हो रही है, सृष्टि थरथरा रही है। यह अहङ्कार, पतन का तूफान था। आकाश वाणी हुई—'ब्राह्मण तेरा गर्व मिथ्या है—किस बात पर तेरा अहङ्कार इस तरह क्षुब्ध हो उठा? तुझ से बडा तपस्वी मिथिला का राजा जनक है। जा उसके यहाँ और उससे उपदेश ग्रहण कर'। ब्राह्मण मजबूर था। आकाशवाणी हुई थी—उसे जाना पडा। भाँति भाँति के संकल्प और विकल्प, सदेह और शङ्का उसके भीतर उठती रहीं। राज महल के फाटक पर पहुँचते ही बुलाहट हुई राजा साहब अंदर बुला रहे हैं। ब्राह्मण ने सोचा यह राजा क्षत्रिय होकर द्वार पर आये हुए ब्राह्मण का स्वागत स्वय नही करता। और यह तपस्वी—ब्राह्मण से श्रेष्ठ तपस्वी? आकाशवाणी की सचाई मे भी सन्देह होने लगा।

अंतपुर में पहुँच कर ब्राह्मण ने देखा—राजा पलंग पर अपनी स्त्री के साथ बैठा है, वासना और विनोद की सामग्री . . . .यह क्या ? राजा ने तो ब्राह्मण के सामने स्त्री का चुम्बन कर लिया—मर्यादा की इतनी महान अवहेलना ? क्षण भर के लिए ब्राह्मण की आँखें शायद घृणा और क्षोभ से बन्द हो गईं ! दूसरे ही क्षण जो कुछ देखा अपूर्व था—ब्राह्मण सिहर उठा। शायद उसके पैरों के नीचे से पृथ्वी खिसकने लगी। राजा जनक का एक हाथ स्त्री के गले में था और दूसरा था धधकती हुई अँगीठी पर। हाथ जल रहा था—चर्बी फूट रही थी—हड्डियाँ तड़तड़ा रही थी। शरीर से जितनी साधना और तपस्या हो सकती थी सब ब्राह्मण ने समाप्त कर दी थी। इस तरह की तपस्या तो उसने नहीं की—लेकिन यह शरीर की नहीं आत्मा की तपस्या थी। राजा जनक ने कहा "ब्राह्मण यही मेरी तपस्या है। न तो स्त्री के चुम्बन या सहवास का मेरी आत्मा को कोई सुख है और न इस अंगीठी पर जलने का दुख। मेरी आत्मा सुख, दुख से परे की चीज़ है। तुम ब्राह्मण हो और मैं क्षत्री हूँ या मैं राजा हूँ और तुम तपस्वी हो इस तरह के सासारिक भेद आत्मानुभूति के रास्ते में रुकावट पैदा करते हैं।"

यही महान धर्म है। यही महान सदाचार है। यह स्वतंत्र आत्मा का स्वतत्र प्रकाश है। यहाँ भ्रम नहीं है, भुलावा नहीं। आत्म अनुभूति और आत्मप्रकाश—इसी में सब कुछ है, ईश्वर भी है—सदाचार भी है, जीवन की अपूर्णता मिट जाती है—पूर्णजीवन और अनंत जीवन दार्शनिक रहस्य न रह कर प्रत्यक्ष सत्य हो जाते हैं। यह आध्यात्मिक समन्वय या सामञ्जस्य बुद्धिवाद का महान धर्म है। यह ज़रूरी नहीं कि बुद्धिवाद सदैव तर्क के सहारे खड़ा रहे। जो लोग बुद्धिवाद को पश्चिम से आई हुई एक भयंकर बीमारी समझते हैं—वह भूल करते हैं। सपूर्ण उपनिषत् साहित्य और वेदात मीमांसा इसी बुद्धिवाद पर अवलंबित है। उपनिषदों मे जिस व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आध्यात्मिक सहिष्णुता या व्यापकता पर ज़ोर दिया गया है, वह अगर बुद्धिवाद नहीं तो है क्या ?

इसी मतलब में मैं अपने को बुद्धिवादी कहता हूँ । धर्म में, साहित्य में, कला मे और सदाचार में मैं उन्हीं बंधनों को मान सकता हूँ, जो सदैव से हैं, जो हमारे ही रक्त और हमारी ही आत्मा से पैदा होते हैं, जो चिरंतन हैं इसलिये उपयोगी हैं। हमारा विवेक जिनके साथ समझौता कर लेता है—हमारे व्यक्तित्व के विकास में जो किसी तरह की रुकावट नहीं पैदा करते ।

मेरा धर्म और सदाचार तो रचयिता का धर्म और सदाचार है । मैं तो समझता हूँ कि जब तक साहित्यकार अपनी सीमा को पार कर, अपने सुख, दुख से ऊँचे उठकर, ससार में जो कुछ है पाप, पुण्य, सदाचार, दुराचार, धर्म, अधर्म विष और अमृत, सब को समझ नहीं लेता, सब का अनुभव नहीं कर लेता—तब तक उसे विश्वव्यापी और सनातन आधार नहीं मिल सकता । वे चीज़ें जो अक्षय और अनंत हैं सामने नहीं आ सकती । इसलिये ज़िंदगी की कोई भी संकीर्ण परिपाटी, धर्म या सदाचार की कोई भी निश्चित कसौटी, साहित्य और कला की कोई भी प्रभावशालिनी व्यवस्था आँख मूँद कर स्वीकार कर लेना यही नहीं व्यक्तिगत विकास में बाधा डालेगी, एक प्रकार से घातक भी होगी। घातक इसलिये होगी कि रचना के नए उपकरणों के साथ उसका मेल नहीं हो सकेगा । यह बात मै परिवर्तन की आंतरिक एकता मे विश्वास रखता हुआ लिख रहा हूँ, कोई यह न समझ ले, कि मै जीवन को केवल परिवर्तन समझ रहा हूँ । परिवर्तन की आतरिक एकता सत्य भेद नहीं होने देती (लेकिन यह तो कभी होता भी नहीं) इसका काम है रूप भेद करना और इसीलिये मैं लिख रहा हूँ कि—"रचना के नए उपकरणों के साथ उसका मेल नहीं हो सकेगा ।" बुद्धिवाद को यह तो मालूम है कि जो सत्य हैं सदैव आधुनिक है, लेकिन उसे व्यक्त करने के सभी तरीके आधुनिक नहीं हैं । इसीलिये बुद्धिवाद को जब किसी सत्य की अभिव्यक्ति करनी होती है तो वह वातावरण और परिस्थिति का ध्यान रखते हुए सत्य की अभिव्यक्ति करता है ।

जो लोग यह समझते हैं कि बुद्धिवादी केवल संहार कर सकते हैं—निर्माण करना उनका काम नहीं—वे जगत और सृष्टि के मूल में ही मिथ्यावाद और भ्रम का आरोप करते हैं। सृष्टि का मेरुदण्ड शायद उनकी समझ में चेतना और प्रकाश का नहीं बना है। उनकी नज़र अज्ञान और अंधकार के आगे नहीं बढ़ सकती। मनुष्य की सृष्टि यदि इस अनादि सृष्टि की छाया से ही निर्मिति होती है तो उसके मूल में चेतन है अचेतन नहीं। इसी चेतन को हम बुद्धिवाद कहते हैं। इस समय और सीमा के निर्धारित जगत में हम जो कुछ देखते है—जो कुछ सुनते हैं जो कुछ अनुभव करते है, उसे हम सिर झुका कर स्वीकार कर लेते हैं—यह साधारण बात है। लेकिन जब हम उसकी तात्विक विवेचना करते हैं—उसे हर पहलू से उलट-पलट कर देखना चाहते हैं तब हमें भावना के जगत से निकल कर विवेक के जगत मे जाना पड़ता है। हमारी जज़ीरें उतनी कडी नहीं रहतीं—कभी-कभी तो टूट जाती हैं। हमारा दृष्टिकोण विस्तृत हो उठता है, ससार जैसे विवेक और सहानुभूति से भर उठता है। मनुष्य अपने सुख-दुख का उत्तरदायी स्वयं है। यदि वह विचार करे तो उसकी कठिनाइयाँ बहुत कुछ कम हो सकती है। बुद्धिवाद इस रहस्य को स्पष्ट कर देता है। सभ्यता की जटिलता के साथ ही साथ मनुष्य का जीवन भी जटिल होता जा रहा है। समाज और साहित्य में धर्म और सदाचार मे उखाड़ने और बैठाने की क्रिया चल रही है। मनुष्य रूढ़ियों के अंधकार से निकल कर विवेक के प्रकाश में आ रहा है। लोग समझ रहे हैं कि बीते जमाने मे धर्म और सदाचार के नाम पर भयकर अधर्म और भयकर दुराचार हो गए थे। इसलिये यह युग बुद्धिवाद की वकालत कर रहा है। हममें जो सब से साधारण है उसकी आत्मा मे भी असीम वंद है। तब? उदारता और सहिष्णुता! या एक शब्द मे सहानुभूति। चेस्टर्टन ने कहा है "साहित्य का उद्देश्य जीवन का प्रतिरूप खड़ा करना नहीं—उसमें सहानुभूति भरना है।" टालसटाय और रोम्यांरोलां, अनातोले फ्रॉंस और बर्नर्डशा इसीलिये

सफल हो सके हैं। उनके चरित्रों में, उन चरित्रों की भलाई—बुराई में धर्म और अधर्म में मानव हृदय की सहानुभूति स्पष्ट देख पड़ती है। इसलिये बुराई करने वाला हमारे हृदय को जितना आविर्भूत करता है उतना ही आविर्भूत करता है भलाई करने वाला भी! बुराई और भलाई के मेल से ही तो ज़िंदगी बनी है। बुद्धिवाद में बुराई और भलाई की परिभाषा ही भिन्न है। जीवन की व्याख्या में बुराई और भलाई रात और दिन की तरह मिली है—और यही सत्य है।

जहाँ तक मैं समझता हूँ—बुद्धिवाद हमारे यहाँ कोई नई चीज नहीं है। हमारे संस्कार का आधार ही बुद्धिवाद या विवेक जनित प्रवृत्ति है। यूरोप में यह प्रणाली ज़रूर नई है। रोमांटिक लेखकों ने यूरोप में शब्दों के सपने में जीवन की सचाई की ओर से आँखें बंद कर भावनामय भ्रमवाद या मिथ्यावाद का प्रचार किया था। साहित्य और कला के नाम पर संभव असंभव सब कुछ एक कर डाला था। इसके प्रति विद्रोह की धारणा उठी। इब्सन के नाटकों में सब से पहले ज़िंदगी की बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक व्याख्या शुरू हुई और उसके बाद बुद्धिवादी लेखकों की नामावली बढ़ने लगी—बाहरी उपकरणों का उपहास कर भीतरी प्रवृत्तियों की चर्चा चली। साहित्य और जीवन के बीच में जो खाई थी उसे भर कर "जीवन के स्वर में" साहित्य का निर्माण होने लगा। कुछ लोगों का मत है कि पाश्चात्य सभ्यता के नाश करने के दो महान कारण रहे हैं—पहला तो बर्नर्डशा और दूसरा विगत महायुद्ध। विगत महायुद्ध ने यूरोप की सैनिक क्षमता और भौतिक शक्ति का नाश कर दिया। बर्नर्डशा ने यूरोप की मानसिक और सामाजिक शक्ति का नाश कर दिया। मतलब यह है कि यूरोप में मनुष्य का जीवन इतना कृत्रिम और भावना प्रधान हो गया था कि बर्नर्डशा के व्यंग उसे खोखला कर बैठे। यह काम यूरोप में बर्नर्डशा की बौद्धिक कला ने किया। यूरोप का दुराचार-मय गंदा जीवन लेकिन साथ ही साथ नैतिक ढोंग बर्नर्डशा के लिये असह्य हो उठा। उन्होंने जो कुछ था—जैसा था साफ कर दिया!

पाश्चात्य सभ्यता के आकर्षक पर्दे के भीतर कितनी बुराइयाँ थीं—कितना खोखलापन था—बर्नर्डशा ने खोल कर दिखला दिया। आज यूरोप में एक ओर तो वह महर्षि हैं—दूसरी ओर भयकर प्रवृत्ति वादी—सदाचार और धर्म की जड़ काटने वाले, स्वर्ग और नरक की मिथ्या भावना मिटाने वाले। ख़ैर यही तो जगत है। यही जीवन है। हमारा मतलब यहाँ बर्नर्डशा से नहीं—उस बुद्धिवाद से है जो हमारे साहित्य के उन समालोचकों की नज़र में बदनाम हो रहा है—जिनकी भावुकता भयंकर है, लेकिन विवेक दयनीय !

हमारे साहित्य में निर्माण होने लगा है। लक्षण तो शुभ हैं लेकिन अभी समझदारी की ज़रूरत है। ग्येते ने कहा था—"रचयिता के लिये सब से पहली बात है स्वस्थ होना, अगर वह बीमार है तो उसे स्वस्थ हो कर कलम उठाना चाहिए" और "स्त्रियां साहित्य और कला के साथ जो चाहें कर लें, लेकिन पुरुषों को तो संयम के साथ काम लेना ही होगा।" हमारे लेखकों को ग्येते का यह कहना समझ लेना चाहिये। साहित्य और कला मे अपनी बीमारियों को दिखला देना हमारे लिये अच्छा नहीं है। जिस कमी को हम अपने जीवन में अनुभव कर रहे हैं—वह साहित्य का विषय नहीं है। उसे मार डालना होगा ! कोई रोचक कथा गढ़ कर उसे नीचे ऊपर से जला देना—फूँक देना बुरा है। हमारे साहित्य में अधिकाश यही हो रहा है। हमारे लेखक तानसेन की रचना करने चलते है—लेकिन भावावेश में रास्ता भूल जाते हैं और नूरजहा का निर्माण कर बैठते हैं। प्रतिभा की सफलता जीवनबल के अनुसार नापी जाती है। कला के अपूर्ण यंत्र से जीवन का जगा देना ही कला है। जीवन के वे सत्य जो हैं, सामने लाये जायं, शेष छोड़ देना चाहिए। अपने भीतरी विकारों और वासनाओं को सजाकर साहित्य का स्वर्ग बना देना, गंदा है। नैतिक महत्व अनुभव करने में और संयम करने में है। प्रेम के नाम पर साहित्य में जो देखने को मिल रहा है—प्रेम की हत्या और वासना का नृत्य है। हमारे लेखक प्रेमी

और प्रेमिका को पकड़ कर साहित्य की सड़क पर नंगा छोड़ देते हैं। प्रेम के लंबे-लंबे व्याख्यान झाड़े जाते हैं—हँसना रोना बहुत होता है—असंगत और असंभव का ख्याल नहीं रहता, सब कुछ होता है—लेकिन वह नहीं होता—जिसे जीवन कहते हैं। स्वाभाविक जीवन की स्वाभाविक धारणा न होने की वजह से कल्पित जीवन की कल्पित पहेली हमारे विवेक को मंद कर देती है। यहाँ मुझे बीथोफ़ेन का एक वाक्य याद पड़ रहा है—"अगर हम जीवन के प्रवाह को जीवन की मर्ज़ी पर छोड़ दें, तब तो फिर सर्वोच्च के लिये क्या शेष रहेगा"। लेकिन यहाँ जीवन की मर्ज़ी समझने की कोशिश नहीं हो रही है—सर्वोच्च तो अभी बहुत दूर की चीज़ है।

मेरा अपना अनुभव जहां तक है, लेखक की सब से बड़ी चीज उसकी भावुकता नहीं—उसकी ईमानदारी है—वह साधक है, दलाल नहीं। जीवन की प्रयोगशाला [जैसा कि मैंने राक्षस का मंदिर की भूमिका में भी लिखा था] के बाहर साहित्य या कला की विभूतियां नहीं मिल सकतीं। "कला की चरम सीमा" जैसा कि मोशिये रोलां ने अपने प्रसिद्ध नाटक चौदहवीं जुलाई' की भूमिका में लिखा था "कल्पना के साथ नहीं—जीवन के साथ है।" हमारे अधिकांश लेखक ज़िंदगी की ओर से आँखे बंद कर कल्पना और भावुकता का मोह पैदा कर जिस नये जगत का निर्माण कर रहे हैं उसमें ज़िंदगी की धड़कन नहीं है। मनुष्य की आत्मा की बात कौन कहे—वहां तो मनुष्य का रक्त माँस भी नहीं मिलता! शायद मोम के रँगे पुतलों से लेखक जो चाहता है कराता है, लेखक जब चाहता है पुतला हँस देता है, रो देता है, व्याख्यान देने लगता है या प्रेम करने लगता है—उसकी अपनी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती। कल्पना का जीव कल्पना के आगे नहीं बढ़ता। वास्तविक जगत के साथ उसका कोई संबध नहीं लेकिन वास्तविक जगत की धारणा साधारण चीज नहीं—हर कोई कलम पकड़ने वाला उसे सम्हाल नहीं सकता। यह काम तो उसका है जो

महादेव की तरह विष पान कर मृत्युंजय हो सके, यही काम है इस युग के कलाकार का या जैसा कि मैंने सन्यासी की भूमिका में लिखा था तत्व दर्शी कलाकार का। ऐसे समय में जब कि साहित्य में झूठी भावुकता और गंदे मनोवेगों का तूफ़ान चल रहा है—साहित्य और कला के नाम पर विकारों की सजावट हो रही है—"तत्वदर्शी कलाकार"—यह मैं क्या कह रहा हूँ ? आज नहीं, इसका पता कल चलेगा मैं क्या कह रहा हूँ। जीवन वह सच्चा नहीं—जिसकी छुरी हमारे कलेजे के पार न हो जाय। किसी न किसी दिन यह ज़रूर होगा। ज़िंदगी की व्यवस्था में क्षमा तो किसी को मिलती ही नहीं। इसके साथ जो जितनी ही ईमानदारी के साथ पेश आता है, उसकी यातनाएँ उतनी ही कम होती हैं। रचयिता का उत्तरदायित्व ईश्वर का उत्तरदायित्व है—अपनी एकांत साधना में अपनी ही आत्मा का अनुसरण करना लेखक के लिये विशेष उपयोगी होता है। संसार की कैसी छाप उसकी आत्मा पर पड़ रही है—सचाई के साथ उसे यही दिखला देना है—इसके आगे तो वह कुछ कर भी नहीं सकता—लेकिन इतना कर देने पर उसके लिने फिर कुछ शेष नहीं रह जाता। साहित्य या कला व्यसन नहीं, आवश्यकता है, मनुष्य के हृदय की—मस्तिष्क की और आत्मा की। जीवन का विकास ज्यों ज्यों होता है—कला की आवश्यकता भी उसी परिणाम में बढ़ती जाती है—यह आवश्यकता ऐसी नहीं है जो हटाई जा सके या जिसके बिना भी काम चल सके। अपनी अपूर्णता मिटाने के लिये मनुष्य जिस रास्ते की खोज सदैव से करता आया है, वह रास्ता इसी कला के भीतर से होकर गया है।—इस रास्ते में दुर्लंध्य पर्वत हैं, भयंकर नदिया हैं, अगाध समुद्र हैं, सुंदर झरने हैं, वसंत के फूले हुए वन हैं, शरत् के तालाब हैं, हरे भरे मैदान हैं, और धूँधू करते हुए मरुस्थल भी हैं। कलाकार को यह सारा रास्ता तै करना है, उसकी सफलता कहीं पहुँच जाने में नहीं, सब कुछ पार कर जाने में है—हां सब कुछ पारकर जाने में और तभी उसकी कला समय और

सीमा का अतिक्रमण कर शास्वत और सनातन हो सकेगी। इसीलिये मैंने इस बात पर ज़ोर दिया है कि कलाकार की सबसे बड़ी विभूति उसकी ईमानदारी है। जो है नहीं उसकी कल्पना करना या जैसा है नहीं वैसा दिखला देना, रोज़गार या सभ्यता की नजर से उपयोगी चीज हो सकती है—लेकिन जीवन और सचाई की नज़र में तो वह केवल हानिकर नहीं, संहारक भी है। संहारक इसलिये कि उसमें ज़िंदगी के समझने की कोई बात नहीं होती उसमें कोई ऐसी बात नहीं होती जिसे पकड़ कर हम कह सकें 'पा गए, पा गए', जिसकी खोज में पड़े थे पा गए'। कला की कोई भी चीज़ मनुष्य के हृदय में अपने लिये कितनी जगह बना लेती है उसका कितना अंश मनुष्य का अपना अंश हो उठता है—मनुष्य के रक्त और मांस में मिल जाता है, यही असल चीज है। यही कला की सफलता है। और इसी चीज़ को मैं कलाकार की ईमानदारी कह रहा हूँ। यह ईमानदारी भावावेश या रोमैंस में नहीं मिल सकती क्योंकि वहाँ तो जीवन की व्याख्या नहीं मिथ्या सजावट है। जो दिल और दिमाग़ के कमज़ोर हैं, बच्चे की तरह जो पकड़ना सब कुछ जानते हैं, लेकिन छोड़ना कुछ भी नहीं—उनके फुसलाने की बातें हैं। कलाकार की बौद्धिक अभिव्यक्ति अथवा दूसरे शब्दों में तात्विक मीमांसा—समस्याओं और सिद्धांतों, जीवन और जगत की भिन्न-भिन्न वस्तुओं की व्यक्तिगत अनुभूति और प्रवृत्ति के आधार पर निराकरण, सुविधा और शासन के नाम पर अंधविश्वास और मिथ्या परंपरा की वे बातें जो हैं नहीं या होती नहीं या जिनकी वजह से मनुष्य का स्थायी कल्याण होना असंभव है, उनका पर्दा उठा कर उनकी असलियत खोल देना—मेरी समझ में उसकी ईमानदारी है। वह जो कुछ देखता है अपनी नज़र से देखता है उसका अपना मन उसे किस रूप मे ग्रहण कर रहा है—उसकी आत्मा पर उसका कैसा प्रभाव पड़ रहा है—उसे कह देना है, सभव है ससार का फ़ैसला उसके प्रतिकूल हो, यह भी संभव है, लोग उस पर दोषारोपण करें, उसके सबध में संदेह और शंकाएँ की जायँ, लेकिन

उसे तो अपनी जगह से विचलित नहीं होना है, उसका आधार हिलाया नहीं जा सकता।

यहाँ तक तो रचना के सिद्धांतों की बात रही है। जहाँ तक मेरा अपना अनुभव और विश्वास है मैंने कम से कम शब्दों में व्यक्त किया है। लेकिन मैं अपने नाटक की भूमिका लिख रहा हूँ, और इस सबंध में अभी कुछ विशेष नहीं कहा गया। 'राक्षस का मंदिर' और 'संयासी' में पुरानी परिपाटी के छोड़ने का प्रयत्न मैंने किया था। पुरानी परिपाटी से मेरा मतलब द्विजेंद्रलालरांय की नाट्य परिपाटी से है—जिसका प्रभाव हमारे नाटकों पर बहुत बुरा पड़ा है। हमारे जो कुछ इने-गिने नाटक इधर प्रकाशित हुए हैं सब में दुर्भाग्यवश द्विजेंद्रलालराय को आदर्श मान कर लेखकों ने कागज़ रँगा है। द्विजेंद्रलालराय ने नाटकों में बंगाल का शेक्सपियर बनना चाहा था और बगाली आलोचकों की भयंकर भावुकता और दयनीय विचार हीनता के कारण उन्हे कुछ समय के लिये वह पद मिल भी गया। जिस युग में यूरोप के नाटककार शेक्सपियर के नाटकों को मनोविज्ञान और यथार्थ के प्रतिकूल कह कर एक नया रास्ता निकाल रहे थे, बौद्धिक अभिव्यक्ति और मनोवैज्ञानिक मीमांसा का वह रास्ता जिस पर इब्सन से लेकर इस युग तक के सभी श्रेष्ठ नाटककार चलते रहे हैं और चलते ही रहेंगे, उसी युग में शेक्सपियर के अनुकरण पर हमारे देश में भावुकता की एक गंदी प्रवृत्ति फैल गई और उस गंदी प्रवृत्ति के सब से बडे प्रतिनिधि द्विजेंद्रलालराय हुए। कालेज के दिनों में जब मैं शेक्सपियर को पढ़ता था मुझे ऐसा कई बार बोध हुआ कि द्विजेंद्रलाल-राय ने अनुकरण के आधार पर ही भारत के आधुनिक नाट्य साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया वह अनुकरण कहाँ तक श्रेयष्कर हुआ यह बात विचारणीय है। यों तो द्विजेंद्र की नाट्यकला में साधारण समझवालों के लिये सब कुछ है, प्रेम, हत्या, घृणा, सुख, दुख, त्याग, वीरता और कायरता जिस हद तक द्विजेंद्र ने दिखलाया है—इस युग का कोई भी नाटककार नहीं दिखला सका। लेकिन यह सब होते हुए

भी द्विजेंद्र की सारी सृष्टि मिथ्या और असंभव के आधार पर हुई है। मनुष्य चरित्र में या तो उन्हें केवल दैवी देख पड़ा या केवल राक्षसी— या तो केवल प्रकाश देख पड़ा या केवल अंधकार। विरोधी उपकरणों का द्वंद या सामञ्जस्य दिखलाना उनकी शक्ति के परे की चीज़ है। उनका संपूर्ण साहित्य शब्दों और वाक्यों का साहित्य है, जीवन के साथ कहीं भी मेल नहीं खाता। चरित्रों के निर्माण में द्विजेंद्र के लिये भले और बुरे दो ही रास्ते हैं—जो चरित्र भला है अंत तक भला है उसका तेज कभी मंद नहीं पड़ता और जो चरित्र बुरा है अंत तक बुरा है भलाई कभी भूल कर भी उसके पास नहीं फटकती। लेकिन यह मिथ्या है। जीवन और जगत के साथ इसका कोई संबंध नहीं। द्विजेंद्रलाल राय से बढ़कर अंतःकरण का अंधा साहित्यकार मेरी दृष्टि में दूसरा नहीं आया। द्विजेंद्र के 'दुर्गादास' में गुलनार दुर्गादास से कहती है—

गुलानार—क्या मुझ से नफ़रत करते हो?—मेरा कहना तुमको मंजूर नहीं? दुर्गादास! मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि गुलनार घुटने टेक-कर भीख की तरह किसी से प्यार नहीं माँगती—वह दुआ की तरह अपना प्यार बाँटती है।—पसंद कर लो—बेगम गुलनार का प्यार या मौत?

दुर्गादास—पसंद कर लिया, मैं मौत चाहता हूँ।

गुलनार—मौत? अच्छा यही सही—मैं अपने हाथ से तुम्हारी जान लूंगी।—गुलनार से एक चीज़ पाओगे मोहब्बत या मौत। अगर मोहब्बत नहीं चाहते तो मरने के लिये तैयार हो जाओ—कामबख़्श!

[गुलनार के पुत्र कामबख्श का प्रवेश]

गुलनार—कामबख्श—मारो! इसे मारो। इसी दम मार डालो— देख क्या रहे हो!—मारो—

कामबख्श—क्यों अम्मीजान?—बादशाह के हुक्म के—

गुलनार—बादशाह का हुक्म? मेरे हुक्म पर बादशाह का हुक्म? इसीदम मारो।—क्या मेरा कहना न मानोगे? (चिल्ला कर) मारो— मारो—मारो!

इस कथोपकथन की मनोवैज्ञानिक व्याख्या कर अपना समय नष्ट करना मैं नहीं चाहता। विवेकशील पाठक समझते होंगे कि प्रेम के संबंध में कहना या व्याख्यान देना कितना असंभव है। उसी प्रेम के नाम पर द्विजेंद्र ने कितनी गंदी बातें गुलनार के मुंह से कहला दीं। यह सब कितना असत्य और कितना असभव है। गुलनार या तो दुर्गादास को अपना प्रेम दे सकती है या मौत। वाह! धन्य गुलनार और धन्य द्विजेंद्रलाल राय। लेकिन मैं तो ऊपर कह आया हूँ कि द्विजेंद्रलाल का साहित्य शब्दों का साहित्य है—उसमें असलियत का नाम भी नहीं और जहाँ असलियत नहीं, वहाँ आदर्श हो भी नहीं सकता। द्विजेंद्र के प्रत्येक नाटक में, प्रत्येक पृष्ठ में, इस तरह की असंभव और असंगत बातें भरी पड़ी हैं। द्विजेंद्र की कला को वास्तविक जगत या वास्तविक जीवन से कोई मतलब नहीं। इस अंधे और विवेकहीन नाटककार के कारण हमारे देश का आधुनिक नाट्य साहित्य कितना कलुषित हुआ है, कितना कागज़ और कितनी रोशनाई व्यर्थ फेंकी गई है, कितनों का रास्ता भूल गया है कहा नहीं जा सकता। द्विजेंद्र के अनुवाद जब से हिंदी में प्रकाशित हुए स्वर्गीय बाबू हरिश्चद्र के नाटकों को बच्चों का खिलवाड़ कह कर हमारे साहित्यकारों ने दूर फेक दिया—द्विजेंद्र का शब्दों और वाक्यों का तूफान नाट्य-कला का आदर्श बन बैठा और जहाँ देखिए हिंदी के नए नाटकों में वही द्विजेंद्रवाली बनावटी भाषा और बनावटी भावुकता, सुख, दुख, प्रेम, घृणा, जय और पराजय के झूठे चित्र बनने लगे। कुछ लोगों को इस बात का खेद है कि हिंदी में द्विजेंद्र की कोटि का नाटककार अभी पैदा नहीं हुआ—मेरा कहना यह है कि द्विजेंद्र की कोटि तो शेक्सपियर की कोटि थी—इस बंगाली नाटककार की आत्मा के ऊपर शेक्सपियर का भूत आसन जमाए बैठा था। जमाना बदल गया। द्विजेंद्र की मिथ्या भावुकता और रोमैंस की गंदगी की ओर से आँखें फेर कर हमें स्वतंत्र और व्यक्तिगत साधना की ओर झुकना चाहिए। अगर हमें निर्माण करना है तो—और यदि केवल पुस्तकें लिखनी हों तब तो

द्विजेंद्र से अच्छा होगा शेक्सपियर का अनुकरण करना। हिंदी नाटकों पर से जब तक द्विजेंद्र का प्रभाव बिलकुल नष्ट नहीं हो जायेगा तब तक हमारे साहित्य में अच्छे नाटकों का निर्माण होना संभव नहीं।

'सन्यासी' और 'राक्षस का मदिर' लिखते समय मैंने जो प्रयोग प्रारंभ किया था—वह इस नाटक 'मुक्ति का रहस्य' में आकर पूरा हुआ है। इसमें जैसा कि पढ़ने पर मालूम होगा—कुल तीन दृश्य और तीन अंक हैं। एक अंक में केवल एक दृश्य है। बार बार पर्दा गिराना और उठाना रंगमंच को अस्वाभाविक बना देता है। रंगमंच का संगठन ऐसा होना चाहिए कि दर्शकों को ऐसा न मालूम हो कि हम लोग किसी अजनबी जगह में या किसी जादूघर में आ गए हैं। जिस स्वाभाविकता के साथ हम अपने घर में रहते हैं उसी स्वाभाविकता के साथ हमें रंचमंच पर भी रहना है—अथवा दूसरे शब्दों में रंगमंच और हमारे स्वाभाविक निवास में कोई बहुत विशेष अंतर नहीं व्यक्त होना चाहिए। कला का काम है जीवन को जगा देना। इस कारण इस युग में रंगमच की स्वाभाविकता पर बहुत ध्यान दिया जाने लगा है।

इस नाटक में गीत एक भी नहीं है। सम्भवतः कुछ लोग सोचेंगे कि नाटक बिना गीत के कैसे होगा ? मेरी राय में नाटक में गीत रखना कोई बहुत ज़रूरी नहीं है। कभी-कभी तो गीत समस्याओं के प्रदर्शन में बाधक हो उठते हैं। इस युग में नाटक का उद्देश्य मनोरंजन की बेहूदी धारणा से आगे बढ़ गया है। जीवन की जटिलता और गूढ़ रहस्यों को खोल कर दिखलाने का काम आज दिन नाटकों द्वारा जितनी सुगमता से हो सकता है, साहित्य के किसी भी अन्य विभाग से उस सुगमता के साथ नहीं हो सकता। रगमच के ऊपर कृष्ण भी गा रहे हैं—शिव भी गा रहे हैं, दुर्गा भी गा रही हैं, गणेश भी गा रहे हैं—यह अच्छा नहीं है। नाटक में गीत का पक्षपाती मैं वहीं तक हूँ—जहाँ तक इसे जीवन में देख पाता हूँ। जिस किसी चरित्र का स्वाभाविक झुकाव मैं संगीत की ओर देखूगा—उसके द्वारा दो चार गीत गवा देना

मैं मुनासिब समझूगा। 'संचासी' में किरणमयी की अभिरुचि संगीत की ओर है—वह अपनी अंतरिक विभीषिका को संगीत के पर्दे में ढँक कर रखना चाहती है—इसीलिये उसे कभी-कभी मौके बे मौके गाने का जैसे रोग हो जाता है लेकिन 'राक्षस का मंदिर और मुक्ति का रहस्य' में मुझे कोई चरित्र ऐसा नहीं मिला जो गाना चाहता हो—इस कारण इन दोनों नाटकों में एक भी गीत नहीं आ सका।

अभिनय के संबंध में भी मैं स्वाभाविकता पर ज़ोर देना चाहूँगा। तोते की तरह रटे हुए शब्दों को रंगमञ्च पर दुहरा देना ठीक नही होता। मुँह से जो शब्द निकलें उनके साथ ही साथ शरीर के अंगों का संचालन भी ऐसा होना चाहिए कि जो आपस में सामंजस्य स्थापित कर—रंगममंच पर मनुष्य की स्वाभाविक जिन्दगी दिखला दें अथवा हमारा नित्य का जीवन जैसा है रंगमंच का जीवन उसके साथ मेल खा सके। इसी कारण मैंने स्वगत की प्रणाली को अस्वाभाविक समझ कर छोड दिया है। पात्रों की भीतरी भावनाओं और प्रवृत्तिओं को व्यक्ति करने में जितना सहायक मूक अभिनय होता है—उतना स्वगत नहीं। मनुष्य के भीतरी भाव एकांत में भी उसकी भावभंगी चेहरे की आकृति या कभी-कभी किसी तरह का काम कर देने में व्यक्त होते हैं, चुपचाप कुर्सी पर बैठ कर, चारपाई पर लेटकर या ज़मीन पर खड़ा होकर व्याख्यान देने में नहीं। मनुष्य ऐसा कभी करता ही नहीं। दो हिस्सा स्वगत और एक हिस्सा वास्तविक कथोपकथन करा देने में नाटक का लिखना तो सरल हो उठता है—लेकिन नाटकत्त्व विगड़ जाता है, अभिनय की जरूरत नहीं रहती। कोई पात्र किसी दूसरे पात्र को प्रेम करता है—प्रेमी अपने कमरे की दीवाल से या अपनी संदूक से प्रेमिका का चित्र निकाल कर उसे चुपचाप ध्यान से देखता है, उसे छाती से लगा लेता है या उसको चूम लेता है यह हुई मूक अभिनय की बात। दूसरी ओर वह दर्शकों के सामने खड़ा होकर कहने लगता है—'तुम्हें पता नहीं, मैं

तुम्हें हृदय के एक-एक बूंद रक्त से प्रेम करता हूँ ..इहलोक परलोक से प्रेम करता हूँ, जीवन और मरण से प्रेम करता हूँ, मेरे जीवन की अनंत और जोति ! मेरे हृदय की पवित्र मूर्ति......इत्यादि'। स्वगत की इस प्रकार की शब्दावली जीवन के साथ मेल नहीं खाती। जहां कहीं स्वगत ऐसी वस्तु की ज़रूरत पड़ी है मैंने मूक अभिनय से काम लिया है, इसलिये कि ऐसी वस्तु जीवन में प्रायः मिला करती है—लेकिन स्वगत ऐसी वस्तु तो नितांत अस्वाभाविक है। सचाई कहने की नहीं करने की वस्तु है।

प्रयाग, चैत्र शुक्ल ७
सं १९८९ विक्रम

—लक्ष्मीनारायण मिश्र

'मुक्ति का रहस्य' का दूसरा संस्करण प्रस्तुत करते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता है, और आशा है जिस भाँति पाठकों तथा विद्वानों ने पूर्व संस्करण को अपनाया है उसी भाँति इसे भी अपनाकर हमारे उत्साह को बढ़ाएँगे।

पुरुषोत्तमदास टंडन
मंत्री
साहित्य भवन लि० प्रयाग।

पुरुष पात्र

उमाशंकर शर्मा

मनोहर : उमाशंकर का लड़का अवस्था ८ वर्ष

त्रिभुवननाथ : उमाशंकर का मित्र, डाक्टर

बेनीमाधव : उमाशंकर का मित्र, वकील

काशीनाथ : उमाशंकर का चचा

देवकीनंदन : मनोहर का अध्यापक

मुरारीसिंह : टाउन स्कूल का हेडमास्टर

जगई : उमाशंकर का नौकर

स्त्री-पात्र

आशादेवी

पहला अंक

[सड़क के किनारे दुमंज़िला बँगला। बँगले से सड़क तक थोड़ी-सी ज़मीन। उसमें छोटा-सा बगीचा। सड़क से बँगले तक पतली सड़क। उस पर उभड़े हुए कंकड़ और घास। बँगले की सड़क के दोनों ओर फूलों के पौदे। फूलों का क्या कहना, पौदों की पत्तियाँ भी सूख रही हैं। बँगले के सामने जो ज़मीन है उसके चारों ओर छोटी-सी चहारदीवारी है। चहारदीवारी से लगकर केले के पेड़ लगाए गए हैं। लेकिन उन्हें देख कर मालूम होता है कि आसमान से जो पानी गिरता है उसे छोड़ कर साल भर उन्हें कोई दूसरा पानी नहीं मिलता। यहाँ तक तो बगीचे की हालत—बँगले की ओर देखने से यों तो बँगले की बनावट अच्छी है, खिड़कियाँ और दरवाज़े अच्छी लकड़ी और अच्छे शीशे के हैं, दीवालें भी जहाँ तक देख पड़ती हैं रँगी हुई। लेकिन जैसे इधर वर्षों से उसकी सफ़ाई और सफ़ेदी, रँगाई या पालिश नहीं हुई है। सुंदर चीजें भी अगर बेमरम्मत या लापरवाही के साथ रक्खी जाती हैं तो भयंकर हो उठती हैं। वही हालत इस बँगले की है। इस बँगले को देखते ही इसमें रहने वालों की हालत पर, मनुष्य में जो सबसे बड़ी कमज़ोरी या सबसे बड़ा विकार है जिसे साधारण मनुष्य की भाषा में दया या सहानुभूति कहते हैं, जाग उठती है।

शाम हो रही है। डूबते हुए सूरज की किरनें बँगले के ऊपर वाले कमरों के दरवाज़ों और खिड़कियों के शीशे पर पड़ कर चमक पैदा कर रही हैं। गर्मी का दिन है। इसलिये शाम होने पर भी अभी गर्मी कम नहीं हुई है। चारों ओर सन्नाटा-सा मालूम होता है। सामने की सड़क पर कभी-कभी मोटर, टाँगे या इक्के की आवाज़ होती है। बँगले के नीचे एक कोने का दरवाज़ा खुलता है और एक व्यक्ति बाहर निकलता है। आज-कल जैसी कि लोगों की कहने की आदत हो गई है, यह व्यक्ति भारत का भावी

सैनिक है। प्रायः तीस वर्ष की अवस्था, न बहुत लम्बा, न बहुत छोटा मझोले क़द का, न बहुत मोटा, न बहुत पतला; साधारण स्वस्थ शरीर, न बहुत गोरा, न बहुत काला, बिल्कुल भारतीय रंग, गांधी टोपी, खद्दर का कुरता, धोती, पैर में चट्टी। भारत के भावी नेताओं का जो वेश आज-कल चारों ओर देख पड़ता है बिल्कुल वही। यह व्यक्ति दरवाज़ा लगा कर बाहर निकलता है, इतने ही में ऊपर आवाज़ होती है—]

आशादेवी

"सुनिए तो शर्माजी, उमाशकर जी"

[इस व्यक्ति का नाम उमाशंकर शर्मा है। शर्माजी ने १९२१ में अच्छे नंबरों के साथ एम० ए० पास किया था। डिप्टी कलक्टरी में आपका नामिनेशन भी हो गया था। लेकिन आपने असहयोग की लहर में इस्तीफा दे दिया और दो वर्ष के लिये जेल गए।]

[उमाशंकर शर्मा बाहर खड़े होकर देखने लगते हैं। कुछ देर के बाद—]

शर्माजी

क्या है? मुझे देर हो रही है।

[ऊपर के कमरे का दरवाज़ा खुलता है और एक युवती स्त्री बाहर खुली छत पर आकर खड़ी होती है। देवी का नाम आशादेवी है। सुंदर, कोमल, आकर्षक, जिनकी आँखें बाहरी आवरण के भीतर नहीं पैठ सकतीं—उनके लिये जो कुछ चाहिए सब कुछ। बहुत बारीक खद्दर की साड़ी—किनारों पर छपी हुई। खुले हुए अस्त-व्यस्त बाल। देखने से मालूम होता है कि आधुनिक सभ्यता की लहर में देवी जी बहुत दूर तक बह गई हैं। आपकी आँखों में संकोच नहीं है। बोलने में आपकी ज़बान कभी रुकती नहीं।]

आशादेवी

क्षमा कीजियेगा......मैंने समझा शायद आपने मेरी बात नहीं सुनी, और चले गए।

उमाशंकर

कुछ कहना है......आपको?

आशादेवी

जी नहीं . ...योंही . . हाँ, आप लौटेंगे कब ? किस काम से...

उमाशंकर

ठीक नहीं कह सकता। कल चुनाव है। देखूँ लोगों की मनोवृति क्या है ? आप भी कहीं जाना चाहतीं . .

आशादेवी

सिनेमा . लेकिन नहीं .. शायद आप देर . ...

उमाशंकर

आपके साथ मैं शायद न चल सकू। पता नहीं कब तक लौटूँ तब तक.. आप चले जाइएगा। मनोहर को भी साथ ले लीजिएगा।

[उमाशंकर का प्रस्थान। आशा थोड़ी देर तक वहाँ खड़ी रहती है, जब उमाशंकर सड़क तक पहुँच जाते हैं, तब लौट कर कमरे के दरवाज़े पर खडी होती है।]

आशादेवी

मनोहर . ...मनोहर ...इधर चलो।

[कमरे में दरवाज़े के पास एक कुर्सी खींच कर उधर को मुँह कर बैठती है। उसके सामने कमरे के बीच में एक छोटी-सी मेज़ और उसके अगल-बगल में तीन और कुर्सियाँ रक्खी हैं। उसके सामने की दीवाल में एक दरवाज़ा है जिसके बाहर नीचे जाने के लिये सीढ़ी बनी है। उसकी दाईं ओर की दीवाल में भी एक दरवाज़ा है जिसकी दूसरी ओर उमाशंकर का कमरा है। (मनोहर का सामने के दरवाज़े से प्रवेश) मनोहर सीधे आशा के पास न आकर कमरे में इधर-उधर देखता है जैसे कुछ पता लगाना चाहता है—फिर तेज़ी से दूसरा दरवाज़ा खोलकर उमाशंकर के कमरे में जाता है। मनोहर उमाशंकर का लड़का है। इसकी उम्र इस समय आठ वर्ष की है।]

मनोहर

(उसी कमरे मे ताली बजाता है, शोर करने लगता है) कुरता,

टोपी कुछ नहीं...कुछ नहीं.. बाबू जी चले गए...बाबू जी चले गए। (उस कमरे से निकल कर फिर दूसरे दरवाज़े से भाग जाना चाहता है।)

आशादेवी

सिनेमा चल रही हूँ—मिठाई भी खिलाऊँगी, तमाशा भी दिखलाऊँगी।

[मनोहर दौड़ कर आशा के पास आता है, कभी उसका हाथ पकड़ कर खींचता है तो कभी उसका कपड़ा पकड़ कर..]

मनोहर

कब चलोगी? चलो.. अभी चलो।

आशादेवी

(उसके सिर पर हाथ रख कर) अभी नहीं घंटे भर बाद। जब रात होगी।

मनोहर

हूँ . तब तो मैं सो जाऊँगा। चलो...अभी-अभी चलो।

आशादेवी

अच्छा यह तो बतलाओ मैं तुम्हारी कौन हूँ?

मनोहर

तुम बताओ।

आशादेवी

मैं तुम्हारी मा हूँ। आज से मुझे मा कहना।

मनोहर

हूँ ..वह तो मर गई। मर गई।

आशादेवी

कौन कहता है? अपने बाबू जी से पूछ लेना मैं तुम्हारी मा हूँ या नहीं?

मनोहर

नहीं हो। मेरी मा नहीं हो। वह तो मर गई। बाबू जी तो कहते हैं मर गई। और मुझे भी याद है—उस दिन दोपहर को (कमरे के बाहर हाथ उठा कर) वहाँ वह छत पर कम्बल बिछा कर सुलाई गई थी। मुझे बुला कर उसने अपनी छाती पर बैठा लिया। उसके बाद तुमने मुझे ज़बरदस्ती उठा लिया—वह मेरी ओर देखने लगी—मैं रोता ही रह गया—तुमने मुझे जाने नहीं दिया—वह भी रोने लगी। (ऊपर हाथ उठा कर) फिर वह आसमान की ओर देखती ही रह गई। लोग उसे उठा ले गये। फिर वह नहीं आई। तुम मेरी मा नहीं हो। वह मुझे दूध पिलाती थी। अपने साथ रात को लेकर सोती थी।

आशादेवी

मैं भी तो तुम्हें दूध पिलाती हूँ... अपने साथ लेकर सोती हूँ।

मनोहर

तुम तो मुझे गाय का दूध पिलाती हो। अपना दूध तो नहीं पिलाती

आशादेवी

(मुस्करा कर) मेरा दूध पीओगे?

मनोहर

नहीं तुम्हारा नहीं... किसी का नहीं। मुझे दूध पिलाना होता तो वह मरती क्यों? (उसकी आँखों से आँसू गिरने लगते हैं)

आशादेवी

(अपने अंचल से उसकी आँख पोंछ कर) चुप रहो। चलो तुम्हें सिनेमा ले चलूँ।

मनोहर

वह गई कहाँ? फिर नहीं आएगी?

आशादेवी

नहीं, जो जाता है, फिर नहीं आता। वह भगवान के दरबार में गई

है। वहाँ कोई मरता नहीं। किसी को कोई दुःख नहीं होता।

मनोहर

तब तो वहीं। चलो वहीं चलें। तुम भी चलो। मैं भी चलूँ। बाबू जी को भी ले चलो। वहाँ मा से भेंट होगी। हम सब लोग साथ रहेंगे। मैं वहाँ भागूँगा नहीं। उसी के साथ रहूँगा।

आशादेवी

तुम वहाँ भी भागोगे। शैतानी करोगे।

मनोहर

नहीं, वहाँ नहीं भागूँगा. शैतानी नहीं करूँगा। जो कहेगी वही करूँगा। चलो. वहीं चलो। कब चलोगी?

आशादेवी

नहीं, अभी नहीं। जब बुड्ढी हो जाऊँगी। बीमार पड़ूँगी. तब...

मनोहर

तो अभी बीमार पड़ो न। बता दो बीमार कैसे पड़ा जाता है। मैं बीमार पड़ कर चला जाऊँ. ..

आशादेवी

अभी नहीं। अभी तुम बड़े होगे। पढोगे। साहब बनोगे। तुम्हारा बिवाह होगा। लड़के होंगे। तब तुम बुड्ढे होगे, बीमार पड़ोगे।

मनोहर

और तब वहाँ जाऊँगा?

आशादेवी

हाँ तब

मनोहर

(चिंतित होकर) और तुम कब जाओगी?

आशादेवी

मेरा...भी. विवाह होगा लडके होंगे। जब वह सब बड़े हो जाएँगे उनका भी. विवाह होगा—(अपना बाल हाथ में लेकर)

मेरा बाल सफेद हो जाएगा...मैं बुड्ढी हो जाऊँगी...तब मैं बीमार पड़ूँगी और मर जाऊँगी...तब मेरे लड़के मुझे उठा कर वहाँ पहुँचा देंगे, जहाँ तुम्हारी—मा गई है।

मनोहर

तुम्हारे बाल सफेद हो जाएँगे तब कैसे सफेद ? सन की तरह ? (सिर हिलाता है)

आशादेवी

हाँ, सन की तरह। तुम्हारे ही ऐसे मेरे भी लड़के होंगे।

मनोहर

उनको तुम दूध पिलाओगी ?

आशादेवी

(कुछ सोचने लगती है।) मनोहर ! आज से तुम मुझे मा कहो। मेरे लड़के नहीं होंगे। मैं मर जाऊँगी तो तुम मुझे वहाँ पहुँचा देना। तुम्हारी मा ने मुझ से कहा था...कि मैं तुम्हारी मा बनूं। इधर सुनो। (उसके सिर पर हाथ रख कर) तुम्हें मा की जरूरत है और मुझे बच्चे की। तुम मुझे मा कहो...मैं तुम्हें बच्चा कहूँ। कहोगे न ?

मनोहर

बाबू जी से पूछ लूँ। नहीं तो मारेंगे, कहेंगे तुम्हारी मा तो मर मर गई, झूठ बोलता है। उस दिन उन्होंने झूठ बोलने के लिये मारा था..

आशादेवी

और अगर नहीं मारेंगे तो तुम मुझे मा कहोगे ?

मनोहर

कहूँगा . नहीं.. मैं दिन भर सड़क पर लड़कों में खेला करता हूँ। भगवती की मा उसे पकड़ कर ले जाती है, रामदीन की मा भी उसे पकड़ कर ले जाती है। तुम तो मुझे पकड़ने नहीं जाती। मेरी मा तो मुझे बगीचे के बाहर नहीं निकलने देती थी। दिन भर मेरे पीछे लगी

रहती थी। वह तो मर गई...मुझे मिठाई न देना, दूध न पिलाना... मैं तुम्हें मा नहीं कहूँगा।

[आशा निराश होकर उस लड़के की ओर देखती है। जगई का प्रवेश]

आशादेवी

क्या है जी...?

जगई

डाक्टर साहब आपसे मिलने आए हैं।

आशादेवी

(घबड़ा कर) डाक्टर साहब ?

जगई

जी हाँ...नीचे बरामदे में खड़े हैं।

आशादेवी

कह दो शर्माजी नहीं हैं।

जगई

कहा तो आपसे मिलना चाहते हैं।

आशादेवी

क्यों...कह दो तबियत अच्छी नहीं है।

मनोहर

तब तो तुम भी मा के पास जाओगी ?

आशादेवी

(सम्हलकर) डाक्टर साहब के पास सूई है...मनोहर को छाप लगा दें।

मनोहर

नहीं-नहीं...

[भाग जाता है—सीढ़ियों से होकर नीचे निकल जाता है।]

आशादेवी

कह दो तबियत अच्छी नहीं है। खड़े क्या हो ?

[जगई जाना चाहता है। डाक्टर त्रिभुवननाथ प्रवेश करते हैं, सामने के दरवाज़े से]

डाक्टर

तबियत अच्छी नहीं है—तभी तो डाक्टर की जरूरत है।

[कमरे के इस ओर आकर एक कुर्सी खींच कर आशा के पास बैठते हैं। (जगई का प्रस्थान)—डाक्टर बढ़िया सूट पहने, एक हाथ में फेल्ट हैट और दूसरे में छड़ी लिये। जैसे सिविल सर्जन से मिलने निकले हों। डाक्टर साहब की दाढ़ी मूछ सफ़ाई से बनी है। पाउडर, क्रीम और वालेटाइल सेंट इत्यादि-इत्यादि बहुत-सी चीज़ों से यह पता चलता है कि डाक्टर साहब इस पीढ़ी के उन विकृत हृदय और विकृत मस्तिष्क युवकों में है, जिन्होंने कि साहब बनने के शौक में संस्कार, चरित्रबल या ऐसी सभी बातें जो मनुष्य को पशुत्व के ऊपर उठाये रहती हैं, छोड़ दिया है—जो प्रवृत्तियों के ग़ुलाम हैं। साराश यह कि डाक्टर साहब इस पीढ़ी के उन लोगों में हैं जिनके भीतर भारतीय पतन की चरम दशा देख पड़ती है।]

आशादेवी

इस तरह किसी के घर में चले आने का क्या अधिकार है साहब? यह कहाँ की सभ्यता है?

डाक्टर

जिस घर में रोगी रहता है उसमें डाक्टर को जाने का पूरा अधिकार है। बीमार की नजर में डाक्टर कभी सभ्य नहीं होता, क्योंकि वह उसके मन की बात कभी नहीं करता—इसलिये वह असभ्य होता है.. पशु होता है. राक्षस होता है।

आशादेवी

(उद्विग्न होकर) लेकिन यहाँ कोई बीमार नहीं है।

डाक्टर

क्यों? आपकी तबियत ख़राब है न? उस नौकर से आप कह रही थीं।

आशादेवी

डाक्टर साहब न तो मेरे पास समय है और न मैं आपसे अधिक बातें करना चाहती हूँ।

डाक्टर

हूँ . ...

आशादेवी

कहिए। आप किसलिये...

डाक्टर

शायद आप भूल न गई होंगी। मैं बार-बार नहीं कहता।

आशादेवी

अगर आप मुझे बहुत तंग करेंगे तो मैं कूएँ में कूद कर प्राण दे दूँगी। (सिर नीचे कर ज़मीन की ओर देखने लगती है)

डाक्टर

देवी जी ! प्राण ऐसी सस्ती चीज़ नहीं है। (उसकी ओर देख कर मुस्कराता है।)

आशादेवी

मेरा प्राण बहुत सस्ता है, अगर इसे देकर मैं और चीजों से छुट्टी पा जाऊँ तो...मेरा महाजन ख़ुश रहे...मैं रहूँ या न रहूँ।

डाक्टर

यह तो आप अपने महाजन पर ज़ुल्म कर रही हैं। आप अपने महाजन की ओर एकबार सहानुभूति की नज़र से देखना भी नहीं चाहतीं, और कहतीं हैं प्राण देने के लिये। इधर देखिए (ज़रा सहम कर) आपके प्राण के लिये मैं अपनी दुनिया छोड़ने को तैयार हूँ। जिस दिन मर्ज़ी हो देख लीजिए।

आशादेवी

अच्छा हो आप अपनी दुनिया न छोड़ कर सिर्फ मुझे छोड दें।

डाक्टर

(सिर हिला कर) हूँ—शायद आपको मालूम नहीं। आप मेरी दुनिया से बड़ी हैं। यह बात बहुत कहने की नहीं है—मैंने आपके लिये क्या नहीं किया...डाक्टर होकर...जिस मरीज की ज़िंदगी मुझे सौंपी गई थी . उसको जहर.. ख़ैर . मैं क्या करता। मेरा कमजोर दिल...आह!

[आशा की जाँघ पर अपना हाथ रख देता है। आशा जल्दी से कुर्सी छोड़ कर दरवाज़े के पास खड़ी होती है। डाक्टर भी उठना चाहता है।]

आशादेवी

बस, तुम उठे कि मैंने नौकर बुलाया। नरक के कीड़े....

डाक्टर

देवीजी! आपको पता नहीं कि आप क्या कर रही हैं। आपने दवा में मनोहर की मा को ज़हर पिलाया था।

आशादेवी

अच्छा तब ....

डाक्टर

मुझसे लेकर......

आशादेवी

ख़ैर यह भी सही.. लेकिन इसका मतलब?

डाक्टर

इसका मतलब यह कि आपको मेरी बात माननी होगी। एकबार नहीं, सौ बार!

आशादेवी

और अगर मैं न मानूँ?

डाक्टर

तो फिर दुनिया जान जायगी कि आपने क्या किया।

आशादेवी

मैं कह दूँगी, यह सब झूठ है।

डाक्टर

मेरे पास प्रमाण है ?

आशादेवी

कैसा प्रमाण ?

डाक्टर

आपका पत्र। आपने लिखा है डाक्टर साहब! मैंने आठ बूद डाल दिया है समझा आपने। पूरा पत्र कम से कम बीस लाइन का है।

आशादेवी

(कुछ सोच कर) कोई बात नहीं। देखा जायगा। किसी भी हालत मे मैं अपने चरित्र की पवित्रता छोड़ने पर राज़ी नहीं हूँ। चाहे इसका परिणाम जो हो।

डाक्टर

चरित्र की पवित्रता ? देवी जी! यह सब चीज़ें दुनिया के लिये हैं। जिसे ससार में रहना है...अपनी प्रतिष्ठा बचानी होगी।

आशादेवी

ससार के ऊपर भी कोई चीज है उसे ईश्वर कहते हैं,.डाक्टर साहब! उसकी नजर से बच कर कोई कहाँ जाएगा ?

डाक्टर

वह ससार के ऊपर नहीं. संसार के भीतर है। और फिर वह कहने नहीं आता। उसकी कल्पना ही मनुष्य ने पाप के लिये की है और फिर यहाँ पाप और पुण्य का क्या सवाल है ? यह तो प्रकृति की बात है! जो है, वही है।

आशादेवी

मैं आपसे बहस करना नहीं चाहती ?

डाक्टर

मैं भी नहीं चाहता। तो फिर......

आशादेवी

तो फिर...

डाक्टर

तो यही निश्चित है ? लेकिन पछताना होगा।

आशादेवी

जी नहीं...बिल्कुल नहीं। अगर आप वह बात खोलेंगे, तो आप भी जाएँगे।

डाक्टर

मैं क्यों जाऊँगा ? मैंने उसे जहर तो दिया नहीं।

आशादेवी

लेकिन आपने उसके लिये ज़हर तो दिया !

डाक्टर

मैंने उसके लिये नहीं—आपके लिये ज़हर दिया था। कोई भी मेरे यहाँ से जहर ला सकता है। उसका वह कैसा उपयोग करेगा...इसका जिम्मेदार मैं नहीं।

आशादेवी

लेकिन तो जब आपको पता चला तभी आपने पुलीस को रिपोर्ट क्यों नहीं दी। इसका उत्तर क्या देंगे ?

डाक्टर

मुझे अब पता चला है। जिस दिन रिपोर्ट करूँगा उसी दिन पता चलेगा। और फिर पुलिस में रिपोर्ट करने की क्या ज़रूरत है। मैं शर्मा जी से कह दूँगा। कहना तो होगा ही मुझे। आज तक मैंने कभी हार मानी नहीं है। इसके लिये मैं बनाया नहीं गया था। मुझे कितनी बड़ी आशा दिलाई गई थी। आपको याद नहीं है ? आपने क्या कहा था ?

आशादेवी

डाक्टर साहब ! मैं स्वय पश्चात्ताप से मरी जा रही हूँ। उस समय मेरे मस्तिष्क मे हत्या की भावना नाच रही थी। उस समय मैं मनुष्य-

योनि से उतर कर पिशाचयोनि में चली गई थी। मैंने क्या कहा था उसे भूल जाइये।

डाक्टर

एकबार आप और उसी पिशाचयोनि में उतर कर मैं और कुछ नहीं चाहता, एकबार केवल एकबार, आप मेरी ओर उस नज़र से . जिससे आपने उस दिन देखा था, देख लें—मैं समझूंगा मेरी मज़दूरी मिल गई।

आशादेवी

(कुछ सोच कर) अच्छा—लेकिन एक शर्त है।

डाक्टर

(उत्साह से) कहिये—एक नहीं, एक लाख शर्तें—आपको पता नहीं......इन दिनों मुझ पर क्या बीत रही है। **(गला भर आता है)** तीन महीने हुए जिस दिन पहले पहल देखा था......**(थोड़ी देर रुक कर)** कभी रात को नींद नहीं आई—कितनी कल्पना.. मैं आपको बदनाम नहीं करूँगा। यों आपकी जो मर्जी हाँ तो शर्त...

आशादेवी

बस, वही आठ बूंद आप मुझे भी पिला दें। मैं अब अपने को सँभाल नहीं सकती। मेरा बोझ बराबर बढता चला जा रहा है... उससे छुट्टी लेनी होगी। मैं किसलिये पैदा हुई थी और क्या हो गई ? कहाँ जाना था, कहाँ जा पहुँची। जब कभी सोचने लगती हूँ; मालूम होता है—ओफ़, हाय रे ज़िदगी—हाँ, तो अधिक सोचने की ज़रूरत नहीं है, कहिए स्वीकार है ?

डाक्टर

और अगर स्वीकार न हो ?

आशादेवी

क्यों स्वीकार नहीं होगा ? आप मेरी नैतिक हत्या करना चाहते हैं—लेकिन शारीरिक नहीं। देवता के सिर पर लात मार कर मंदिर में

आतिशबाज़ी करना चाहते हैं ?

डाक्टर

देवता के सिर पर लात रख कर कभी चोर ने घंटा उतारा था। उसे वरदान मिला। आपको याद है या नहीं।

आशादेवी

(मुस्कराकर) तो मैं भी तो वरदान देने को तैयार हूँ, लेकिन मेरी शर्त आपको माननी होगी।

डाक्टर

आपकी शर्त मानने के लिये पत्थर का कलेजा होना चाहिए।

आशादेवी

हूँ.. मेरा चरित्र...स्त्री जीवन का जो सब से बडा भरोसा है... उसे बिगाड़ने में डाक्टर साहब इसके लिये भी पत्थर का कलेजा होना चाहिए। (डाक्टर की ओर देखने लगती है) मेरे कहने का आप पर असर नहीं होता। मैं आपको धोखा देना नहीं चाहती. व्यर्थ की आशा और माया जाल में आपको रख छोड़ना ठीक नहीं है। अब आप यहाँ न आया करें।

डाक्टर

मुझे एकबार और आना होगा...शर्मा जी से कहने के लिये।

आशादेवी

(उद्विग्न होकर) उनसे कहने ? कहियेगा मत डाक्टर साहब ! कितना बड़ा विश्वासघात होगा. मैं उनके सामने कैसे जाऊँ...वे क्या कहेंगे ?

डाक्टर

मैं उनसे सब कुछ खोल कर कह दूँगा। किस तरह आप उस रात गई। किस तरह कैसी आशा दिला कर मुझसे ज़हर लिया और फिर क्या क्या हुआ।

आशादेवी

कब आएँगे आप उनसे कहने ?

डाक्टर

आज या कल।

आशादेवी

कुछ दिन और ठहर जाइए। मैं अपने को इसके लिये तैयार कर लूँ।

डाक्टर

(उठते हुए) मैं आपके लिये क्या नहीं कर सकता 'लेकिन जो होने को नहीं है...उसके लिये . ...

[मनोहर का प्रवेश। सीढ़ी के पास बाहर खड़ा होता है]

मनोहर

अब तो रात रात हो रही है . चलिये न सिनेमा...

डाक्टर

आप सिनेमा जाएँगी ?

आशादेवी

जी हाँ, विचार तो है। आप भी चलेंगे ?

डाक्टर

चलिये न। लेकिन तब मनोहर को न ले चलिए।

आशादेवी

(संदेह से) क्यों ?

डाक्टर

इसलिये कि रात को उसे तकलीफ...

आशादेवी

लेकिन वह मानेगा...नहीं . उससे कह दिया .

डाक्टर

कोई बहाना कर दीजिए।

आशादेवी

मनोहर ! डाक्टर साहब के साथ चलोगे ? उनके पास सुई है।

मनोहर

(रोता हुआ) ऊँ नहीं...नहीं जाऊँगा। (भाग जाता है)

आशादेवी

ठहरिए मैं कपडे बदल आऊँ।

[आशा का प्रस्थान। डाक्टर उसकी ओर देखते रह जाते हैं। आशा के चले जाने पर कमरे में इधर-उधर टहलने लगते हैं। मेज़ पर हाथ रख कर नीचे देखते हुए सिर झुका कर खड़े होते हैं। उनकी आँखें बंद हो जाती हैं। मनोहर सीढ़ी के ऊपर आकर कमरे के बाहर खड़ा होता है। थोड़ी देर तक डाक्टर की ओर भय से देखता रहता है।]

मनोहर

सूई ..(अपनी बाँह उठा कर टीका लगाने की जगह को बार-बार चुटकी से मलता है) नहीं ..नहीं डाक्टर साहब पूजा कर रहे हैं। आँख बंद किए हैं।

[डाक्टर उसी तरह खड़े-खड़े उसकी ओर देखते हैं]

मनोहर

पूजा कर रहे थे डाक्टर साहब ?

डाक्टर

(कुछ सोचते हुए) हाँ .

मनोहर

आप मंत्र जानते हैं ?

डाक्टर

(कुछ सोचते हुए) नहीं .

मनोहर

(ताली बजा कर इधर-उधर उछलते हुए) तब पूजा किसकी कर रहे थे ? मालूम होता है आप सुई कहीं भूल गए हैं.. उसी को सोच रहे थे।

डाक्टर

सुई.. कैसी सुई ?

मनोहर

(अपनी बांह उठा कर) इसमें छेदने के लिये। आपके कोई लड़का नहीं है डाक्टर साहब? उसकी बाँह में तो आप सुई नहीं चुभाते होंगे?

(डाक्टर उसकी ओर देख कर मुस्कराते हैं)

मनोहर

बतलाइए। बतलाते क्यों नहीं? आपके लड़का है?

डाक्टर

नहीं। मैं जिस लड़के की बाँह में सुई चुभाता हूँ...उसी को लड़का मान लेता हूँ।

मनोहर

तब तो आपके बहुत से लड़के होंगे। उनको कभी मिठाई खिलाते हैं डाक्टर साहब? वे बीमार पड़ते हैं तो दवा का दाम लेते हैं या नहीं?

आशादेवी

(दूसरे कमरे से) शैतानी करोगे मनोहर? इसको छाप लगाइए डाक्टर साहब।

मनोहर

अच्छी बात (डाक्टर के पास आकर—बाँह उठा कर खड़ा होता है) हाँ, लगाइए छाप डाक्टर साहब—अब मैं नहीं मानूंगा। लगाइए... लगाते क्यों नहीं? देरी न कीजिए...मैं भी चलूँगा सिनेमा देखने।

डाक्टर

छाप लगाने पर तुम्हें बुख़ार आ जाएगा।

मनोहर

(कुछ सोचकर) और मैं बीमार पड़ कर मर जाऊँगा। (ऊपर हाथ उठा कर) फिर वहाँ चला जाऊँगा। मा के पास। (हाथ जोड़कर) हाथ जोड़ता हूँ। डाक्टर साहब मुझे छाप लगा दीजिए। मैं बीमार पड़ूँगा। मा मिलेगी। मेरी मा—(उसकी आँखों से आँसू चल पड़ते हैं।)

डाक्टर

(मनोहर के सिर पर हाथ रखकर) तुम अपनी मा को याद करते हो मनोहर ?

मनोहर

कोई अपनी मा को भी भूल सकता है.. डाक्टर साहब ? (दूसरे कमरे की ओर हाथ उठा कर) यह कहती हैं कि मुझे मा कहो। मुझे सिनेमा दिखाने को कही थीं। मैं लडकों से कह आया...मैं सिनेमा देखने जा रहा हूँ। अब कहती हैं, मत चलो। कल जब लड़के पूछेंगे.. मै क्या कहूँगा ? मेरी मा कभी ऐसा करती ? मैं इन्हें कभी मा नहीं कहूँगा।

डाक्टर

(धीरे से) हाँ, कभी न कहना।

मनोहर

कभी नहीं कहूँगा डाक्टर साहब ! मेरी मा मर गई मर गई... मर गई . (उसकी देह काँपने लगती है)।

डाक्टर

और अगर तुम्हारे बाबूजी विवाह करें।

मनोहर

किससे...मा तो मर गई।

डाक्टर

किसी से...(दूसरे कमरे की ओर हाथ उठा कर) और अगर इन्हीं से करें...तब तो तुम इन्हें मा कहोगे।

मनोहर

(गर्दन टेढ़ीकर) कभी नहीं। इससे क्या ? मेरी मा तो मर गई।

डाक्टर

लेकिन अगर तुम इन्हें मा नहीं कहोगे तो खाने को नहीं पाओगे।

मनोहर

(कुछ सोचकर) डाक्टर साहब ! सड़क के उस पार जो अनाथालय है उसमें जो लड़के रहते हैं उनकी मा मर गई है। मैंने कई लड़कों से पूछा है सब कहते हैं कि उनकी मा मर गई है। उसमें लड़कों को खाना मिलता है—सवेरे दूध भी मिलता है। दिन भर खेलते रहते हैं, कोई मारता नहीं, मैं भी उसी मे चला जाऊँगा।

डाक्टर

अयँ ! अनाथालय में ?

मनोहर

तो क्या ? सब लड़के तो रहते हैं...

डाक्टर

उसमें ग़रीब लड़के रहते हैं...जिनको घर पर खाने को नहीं मिलता।

मनोहर

अच्छा तो जब मुझे खाने को नहीं मिलेगा तो मैं भी चला जाऊँगा।

[कपडे पहन कर आशा का प्रवेश। उसके खुले हुए बाल रेशमी फीते से बँधे हैं। साड़ी का अञ्चल बाईं ओर से घूम कर दाहिनी ओर कंधे से नीचे पीछे की ओर लटक रहा है। दाएँ कंधे पर अञ्चल चुन कर सुनहली क्लिप में समेट दिया गया है। पैर में कामदार जैपुरी जूता है। डाक्टर साहब एकबार नज़र दौड़ा कर उसे नीचे से ऊपर तक देख लेते हैं—फिर मनोहर की ओर देखने लगते हैं।]

आशादेवी।

(मनोहर से) मुझे मा कहो तो तुम्हें लिवा चलूँगी।

मनोहर

मा ? तुमको. नहीं.. नहीं...नहीं...

आशादेवी

(मुस्करा कर) नहीं कहोगे ?

मनोहर

कभी नहीं। मेरी मा तो वहाँ है (ऊपर हाथ उठाता है)

डाक्टर

तुमने वहाँ कभी देखा है अपनी मा को ?

मनोहर

हाँ, एकबार। जिस दिन वह वहाँ (कमरे के सामने खुली छत की ओर हाथ उठा कर) मरी थी और लोग उसे उठा ले गए.. मैं चाँद की ओर देख रहा था। वहाँ मा खड़ी थी और मुझे बुला रही थी। वहाँ मैं कैसे जाता डाक्टर साहब ? मैं चील होता तो वहाँ उड़ कर चला जाता। तब से मैं बराबर चाँद की ओर देखता हूँ—लेकिन मा नहीं आती।

डाक्टर

तुमसे नाराज़ है।

मनोहर

इसीलिये तो मै किसी को मा नहीं कहता...नहीं तो और नाराज़ हो जाएगी, हो जायगी न ?

डाक्टर

(अन्यमनस्क होकर) हाँ, हो जाएगी।

आशादेवी

देखिए, आप इस लड़के का दिमाग़ और बिगाड रहे हैं।

मनोहर

(चिढ़कर) चाहे जो करो, मै तुम्हें मा नहीं कहूँगा।

आशादेवी

अच्छा तो मैं जा रही हूँ।

मनोहर

जाओ न।

आशादेवी

चलिए साहब !

[आशा और डाक्टर का प्रस्थान । मनोहर सीढ़ी पर जाकर नीचे की ओर झाँक कर देखता है ।]

मनोहर

जाओ...जाओ । तुम्हें मा नहीं कहूँगा । (लौटकर कमरे में आकर खड़ा होता है और ऊपर छत की ओर देखने लगता है) मा.. मा... उतर आओ नीचे । यहाँ कोई नहीं है.. तुम्हें कोई पकडेगा नहीं। कोई नहीं पकड़ेगा—कह तो रहा हूँ । नहीं आएगी, नहीं आएगी !

[बैठकर मेज पर सिर रख देता है । आशा का प्रवेश । आशा सीढ़ी के ऊपर कमरे के बाहर खड़ी हो जाती है । क्षण भर मनोहर की ओर देखती है । फिर तेज़ी से आगे बढ़कर मनोहर को गोद में उठा लेती है]

मनोहर

छोड दो...छोड़ दो...छोड़ दो ।

आशादेवी

चलो लाल ! तुम्हें ले चलूँगी । मुझे मा न कहना । बस अब मानोगे न ..

मनोहर

छोड़ दो . (उसकी गोद में छटपटाने लगता है । आशा उसे धीरे से नीचे उतार देती है ।)

आशादेवी

(मनोहर का हाथ पकड़ कर) चलो चलें ।

मनोहर

(आशा की ओर देख कर) नहीं जाऊँगा अब । जानती हो मा ने मुझसे क्या कहा था ?

आशादेवी

नहीं ।

मनोहर

अच्छा सुनो—उस दिन रात को कोई नहीं था (दूसरे कमरे की ओर हाथ उठाकर) मा उस कमरे में सोई थी। दूसरा कोई नहीं था... मैं चला गया। उसने मुझे अपनी छाती पर बैठा कर कहा 'बाबू मेरे मर जाने पर किसी चीज़ के लिये किसी से हाथ न जोड़ना।' मैं तुम से हाथ नहीं जोड़ूगा।

आशादेवी

हाथ जोड़ने को कौन कहता है? चलो।

मनोहर

नहीं मानोंगी तो मैं रोने लगूंगा। चली जाओ।

[आशा कुछ देर तक उद्विग्न खड़ी रहती है। फिर धीरे-धीरे सिर नीचे कर चली जाती है। मनोहर बेचैन होकर इधर-उधर देखने लगता है। किवाड़ खोल कर दूसरे कमरे में जाता है और अपनी मा की तस्वीर लेकर निकलता है। तस्वीर को दोनों हाथों से पकड़कर उस पर अपना सिर रख देता है।]

मनोहर

मा—मा बोलो। नहीं बोलोगी? नहीं बोलोगी? अच्छा तब मैं उसे मा कहूँगा और तुम्हें चिढाऊँगा।

[दूसरे कमरे में कोई आवाज होती है, मनोहर चौंक कर खड़ा होता है। धीरे-धीरे पैर दबा कर कमरे के दरवाजे पर जाता है और दूसरे कमरे में झाँक कर देखता है। फिर ओठ दबाते हुये लौटता है, उसकी नाक कभी ऊपर उठती है, कभी नीचे झुकती है]

कोई नहीं है.. ..कोई नहीं है। [जगई का प्रवेश।]

जगई

चलोगे बाबू! शहतूत खाने?

मनोहर

नहीं। (कुछ सोचने लगता है)

जगई

चलो न, खूब पक गई है।

मनोहर

(डाँटकर) चला जा। उस दिन नहीं पकी थी कि बाबू जी ने मुझे मारा और कहने लगे कि रात को शहतूत खाता है बीमार पड़ जाएगा!

जगई

वह तो शहर गए हैं...रात को आएँगे।

मनोहर

नहीं जाऊँगा—नहीं जाऊँगा...मेरे बहाने शहतूत खाएगा और मारा जाऊँगा मैं।

[जगई का प्रस्थान]

[मनोहर सामने के दरवाजे पर कुर्सी खींच कर बैठता है। तस्वीर को नाक के सामने ऊपर उठाकर देखने लगता है। (बातें करते हुए शर्माजी और बेनीमाधव का प्रवेश) बेनीमाधव शर्माजी की अवस्था के हैं। रेशमी कुरता, बढ़िया पाड़ की विलायती धोती न राष्ट्रवादी और न अंग्रेज़ी प्रभुत्व के गुलाम, लबे, तगडे, घनी लंबी मूछें, शायद उनके लिये अपना मतलब चलता रहे...यही ससार का सबसे बड़ा सिद्धांत है।]

शर्माजी

(मनोहर के पास जाकर) क्या कर रहे हो? तस्वीर तोड़ डालोगे?—मैं तो हैरान हो गया हूँ तुम्हारी शैतानी से। बार-बार मना किया, कि कोई चीज़ न छुआ करो, तुम नहीं मानते। मुझे फ़ुर्सत नहीं है कि बराबर तुम्हारे पीछे पड़ा रहूँ। देखा करू तुम क्या कर रहे हो, कैसे रहते हो। मास्टर साहब आए थे?

मनोहर

(कातर दृष्टि से शर्माजी की ओर देखता हुआ) अभी नहीं।

शर्माजी

अभी नहीं ! पहली तारीख़ को पद्रह रुपये के लिये सिर पर चढ बैठेंगे। क्या कहूँ, जिसके साथ जितनी ही उदारता दिखलाई जाय वह और भी ख़्याल नहीं करता। अच्छा जाओ नीचे ! (उसके हाथ से तस्वीर ले लेते हैं) जगई ! जगई !

जगई

(नीचे से) आ रहा हूँ साहब...

शर्माजी

अभी लालटेन नहीं जली ?

[लालटेन लेकर जगई का प्रवेश। दूसरे कमरे में लालटेन रख देता है। इस कमरे में भी काफ़ी रोशनी हो जाती है। जगई और मनोहर का प्रस्थान]

बेनीमाधव

किसका चित्र है ?

शर्माजी

मेरी पहली स्त्री का..

बेनीमाधव

तो क्या कोई दूसरी स्त्री भी है ?

शर्माजी

(असमंजस में) जी नहीं 'अभी तो नहीं।

बेनीमाधव

तब पहली क्यों ?

शर्माजी

मैं भूल गया कि यहाँ के नामी वकील के सामने खड़ा हूँ। नहीं तो ऐसी ग़लती नहीं करता (दूसरे कमरे में प्रवेश कर) आओ यहीं बैठें।

बेनीमाधव

(कमरे के दरवाज़े पर जाकर) वाह साहब। यह तुम्हारा कमरा

है या अजायबघर। (कमरे में चारों ओर देख कर) जिधर देखिए... किताबें, अख़बार, नोटिसें, कैसे रहते हो इसमें ?

शर्माजी

आओ भी।

बेनीमाधव

आख़िरकार बैठा कहाँ जाएगा ? कुर्सियों पर भी तो काग़जों का ढेर लगा है।

[शर्माजी कुर्सियों पर से कागज उठाकर इधर-उधर जमीन पर फेंकने लगते हैं, जिसकी आवाज़ बाहर सुनाई पड़ती है।]

बेनीमाधव

हुँ—हुँ—क्या कह रहे हो, इतनी धूल उड़ रही है। आओ, बाहर वहाँ छत पर बैठें—बड़ी गर्मी है। (रुमाल निकाल कर नाक दबा लेते हैं) चेयरमैन होकर भी शायद अपना आफ़िस ऐसे ही रक्खोगे।

शर्माजी

(बाहर निकलते हुए) नहीं, वह घर नहीं रहेगा कि जैसा रहे कोई बात नहीं।

बेनीमाधव

जी नहीं, घर की आदत बाहर भी नहीं छूटती।

शर्माजी

अच्छी बात। तब तक मैं चेयरमैन हो ही कहाँ रहा हूँ।

बेनीमाधव

(छत की ओर बढ़ते हुए) चेयरमैन तो हो जाओगे। इसमें तो कोई सदेह नहीं। तुमने देश के लिये जो त्याग किया है—डिप्टी कलक्टरी के लिये चुने जाने पर, ट्रेनिंग भी ख़तम हो जाने पर, तुमने स्तीफा दे दिया। जो सुनता है, हैरान हो जाता है।

शर्माजी

जगई ! जगई !

बेनीमाधव

क्या होगा ?

शर्माजी

कुर्सी बाहर रख दे।

बेनीमाधव

(एक कुर्सी उठा कर बाहर छत पर निकलते हुए) बुलाओ, तुम नेता हो। मुझे तो रोज़ दस बार इधर से उधर कुर्सी करनी पड़ती है।

[शर्माजी एक कुर्सी लेकर बाहर निकलते हैं—जगई का प्रवेश]

शर्माजी

कुछ नही जाओ। मनोहर कहाँ है ?

जगई

नीचे तखत पर सो रहे हैं।

शर्माजी

सो रहे हैं ? इस समय ? बड़ा चाडाल लड़का है। अभी यह हालत है, आगे क्या करेगा ? (जगई का प्रस्थान)

बेनीमाधव

उसकी मा मर गई है। तुमको उस पर उदार होना चाहिए। (कुर्सी पर बैठते हैं)

शर्माजी

(कुर्सी पर बैठते हुए) उदार होना चाहिए.. ऐं, तुमको पता नहीं मेरी जिंदगी आज-कल क्या हो गई है। जिस साल मैं फोर्थइयर में था मैंने अपने हाथ से पाच हजार रुपया एक साल में खर्च किया था...जब कि दूसरे लड़कों का काम पाँच सौ में ही चल जाता था। और आज, मेरी स्त्री मर रही थी, मैं इस लायक नहीं था कि उसकी ठिकाने से दवा कर सकू। चचा जी चाहते थे कि मैं रोता हुआ उनके सामने खड़ा होऊँ और तब वह दुनियादारी का लेक्चर देकर अपनी लोहे की सदूक खोलें और मुझे रुपया दें। मुझ से यह नहीं हो सका। इसके लिये मुझे

कितना कष्ट सहना पड़ा...ओफ, याद कर तबियत दहल उठती है, शरीर का एक-एक बूद रक्त नाचने लगता है। यह बात सच है कि मुझे दुनियादारी नहीं आती। लेकिन शायद इसके लिये मैं पैदा भी नहीं हुआ था। मुझे इसकी परवाह नहीं है कि दुनिया मुझ पर सदेह करेगी।

बेनीमाधव

लेकिन दुनिया तुम पर सदेह क्यों करेगी?

शर्माजी

(बेनीमाधव की ओर ध्यान से देखकर) बेनी बाबू . (रुक जाते हैं)

बेनीमाधव

हाँ-हाँ, कहो—आज मैं इसीलिये आया हूँ कि तुम्हारी सभी बातें सुन लूँ। कल को तुम चेयरमैन हो जाओगे। फिर पता नहीं...

शर्माजी

हूँ—तो तुम मेरी सारी बातें सुन लेना चाहते हो आज.. जब कि मैं दुर्भाग्य की भँवर में नीचे-ऊपर हो-रहा हूँ...अब गया, तब गया—क्यों (थोड़ी देर रुक कर) कल जब मैं चेयरमैन होकर सौभाग्य के शिखर पर चढ जाऊँगा—तब तुम नहीं सुनोगे। (उद्विग्न होकर) ठीक है... आज ही सुनो आज तुम्हारी छुरी ज्यादा काम करेगी ..कल को तो शायद हाथ हिले। अच्छा तो सुनो! औरों की बात कौन कहे पहले तो तुम्हीं मुझ पर सदेह कर रहे हो।

[बेनीमाधव एक बार उनकी ओर देख कर चुप रह जाते हैं]

शर्माजी

हूँ तो मौन सम्मति लक्षण—(सिर हिला कर) यहाँ क़ानूनी कूट-नीति की जरूरत नहीं है। मैं तो साफ़ कहता हूँ और साफ सुनना चाहता हूँ।

बेनीमाधव

तो क्या मेरा सदेह निराधार है? (मुस्करा कर भौंहे नचा देते हैं।)

शर्माजी

(कुछ सोचकर) मान लो कि मैं देवीजी को प्रेम करता हूँ, तो.. ?
(सिर नीचे कर दाँतों से ओठ दबा लेते हैं)

बेनीमाधव

(रूखे स्वर में) तो कुछ नहीं ..जैसी खुशी . लेकिन समाज

शर्माजी

(रूखे स्वर में) समाज का ठेकेदार कौन है, मैं या तुम ?

बेनीमाधव

हम दोनों...।

शर्माजी

कोई नहीं। हम दोनों सुंदर भोजन पर, सुदर वस्त्र पर, सुदर स्त्री पर—धन, कीर्ति, यश, दुनिया की इन सब चीज़ों पर . समाज के मुखिया कहते बहुत हैं...करते कुछ नहीं। या सडक पर जिसे पाप समझते हैं, कमरे में उसी की उपासना करते हैं। अपने भीतर एकबार देखो तो मालूम होगा। हम जिस सफाई के साथ अपने पुण्य का विज्ञापन देते हैं, अगर उसी सफाई के साथ अपने पाप का विज्ञापन देते, तो मुझे पूरा विश्वास है, हम लोगों की नैतिक दशा आज की स्थिति से कहीं अच्छी होती।

बेनीमाधव

इसका मतलब कि तुम से और कुछ कहना फ़जूल है।

शर्माजी

फजूल नहीं है। मुझ से जो कुछ, जितना कहना चाहो कहो, लेकिन अपने को भी याद रक्खो, अपनी ज़िंदगी को...अपनी ओर देख कर मेरी ओर देखो, तब तुम मुझे समझ सकोगे। मेरे पाप को, मेरे पुण्य को . अगर इन चीज़ों का कुछ मतलब हो सकता है या इन चीजों में कुछ सचाई है।

[एकाएक उठकर टहलने लगते हैं, ऊपर देखते हैं, आसमान में चन्द्रमा

निकल आया है—छत के किनारे खड़े होकर बाहर सड़क की ओर देखते हैं और फिर लौटकर कुर्सी पर बैठते हुए बेनीमाधव का हाथ अपने हाथ में लेकर]

तुम जानते हो असहयोग की लहर में . .. स्तीफा देने के बाद...मैं दो वर्ष के लिये जेल गया। मैं मोतीलाल नेहरू तो था नहीं कि मेरे पास जेल में भी सभी चीजें मौजूद थीं, अख़बार भी, किताबे भी, या एक शब्द में आनद भवन की दीवाल को छोड़कर आनद भवन की बाकी सभी चीजे। मैं केवल असहयोगी नहीं था, क्रातिकारी था। नौकरी से स्तीफा देकर मैंने नौकरशाही की मशीन का छेद दिखलाया था, उसे ज़बरदस्त धक्का दिया था। इस-लिये जेल में मेरी अच्छी ख़बर ली गई। चोर और हत्यारे की तरह मेरी सासत की गई। तुम मेरे लड़कपन के साथी थे। मुझे याद आता है जब हम दोनों दर्जा तीन में पढते थे, हमने एकही आम बारी-बारी दात से काट कर खाया था···कालेज तक साथ रहे। उन चौबीस महीनों में तुमसे यह भी नहीं हो सका कि अपने लड़कपन के साथी और अपनी जवानी के मित्र को एकबार देख आते। तुम जाते कैसे? दो दिनों में दो सौ रुपए छोड़ने पड़ते। मामूली आदमी के लिये यह मामूली बात नहीं थी। **(थोड़ी देर ठहर कर)** मतलब यह है कि तुम नहीं गए। घर वालों को क्या पड़ी थी? माँ बाप थे नहीं। चाचा जी को कलक्टर साहब और डिप्टी कलक्टर साहब की दावत देने से ही फुरसत नहीं थी। दुनिया में जो अपने सगे कहे जाते हैं, उनके इस व्यवहार से मुझे जितना दुःख हुआ, उतना जेलर की बदमाशी से नहीं।

बेनीमाधव

ठहरो...

शर्माजी

क्यों?

बेनीमाधव

इसलिए कि जो बीत गया…मैं मानता हूँ हम लोगों से ग़लती हुई।

शर्माजी

जो बीत गया · बहुत कुछ जीवन में दे गया ले, गया · वह मिटाने की चीज़ नहीं है। जो ग़लती आप लोगों से तब हुई, वही ग़लती इधर भी होती रही है और होती रहेगी। इसलिये कि अब मैं आप लोगों के काम का नहीं रहा। आप लोगों को मैं सतुष्ट नहीं कर सकूँगा।

बेनीमाधव

वही ग़लती इधर भी ? इसका मतलब ? कहोगे ईमान से इधर तुमने क्या कहा मैंने नहीं किया ?

शर्माजी

अजी मैं तुमसे कहता कुछ करने के लिये ? कभी नहीं। जब मेरे जीवन के लिये कहने के सिवा और कोई चारा नहीं रह जाता तो शायद मैं अपने यहाँ के मजिस्ट्रेट मिस्टर कार्टन से कहता, जिनकी नज़र में मैं नौकरशाही का सब से बड़ा शत्रु था और जिन्होंने मुझसे बदला लेने के लिये बड़ी कोशिश कर दो वर्ष सख़्त क़ैद की सजा दिलाई थी। शत्रु से हाथ जोड़ते बनता है, लेकिन मित्र से नहीं।

बेनीमाधव

मैं तो तुमसे हज़ार बार हाथ जोड़ सकता हूँ।

शर्माजी

तुम जोड़ सकते हो, चालाकी के लिये। मुझे यह नहीं आता। सात सौ तीस दिन जेल में बीत गए। जिस दिन दो बजे मुझे बाहर निकलना था, ठीक बारह बजे जेलर ने आकर कहा क्यों साहब अभी तक आपके स्वागत के लिये तो कोई नहीं आया। आपके घर पर कोई नहीं है ? मुझे मालूम हुआ जैसे मैं अनत काल से अकेले था, न मेरे नीचे पृथ्वी थी और न ऊपर आकाश ! बेनीबाबू जिन्होंने ससार को

माया कहा था, मिथ्या और भ्रम कहा था, उन्हें असली बात मालूम थी।

बेनीमाधव

तुम जानते हो वेदात की बातें, मेरी समझ में नहीं आती।

शर्माजी

तुम्हें फुर्सत कहाँ है ? दिन भर कचहरी में मुंसिफ साहब, जज साहब, मुहर्रिर साहब या शायद मुअक्किल साहब भी, रात भर घर में, माँ, बाप, बाल-बच्चे, इधर-उधर की गप्प शप्प एकबार क्षण भर इनसे ऊपर उठ कर देखो, तब मालूम होगा वेदात क्या है ? दुनिया तुम्हारे लायक है और तुम दुनिया के लायक हो, इसलिये तुम वेदात नहीं समझते। जिस दिन तुम दुनिया के लायक नहीं रहोगे या जिस दिन दुनिया तुम्हारे लायक नहीं रहेगी, उस दिन तुम वेदात समझोगे। या उस दिन तुम वेदात छोड़कर और कुछ नहीं समझोगे।

बेनीमाधव

लेकिन शायद वह दिन आयेगा नहीं। मैं तो समझता हूँ मनुष्य को बराबुर दुनिया के लायक होना चाहिए। सभ्य मनुष्य होकर दुनिया के लायक न होना, यह बात तो मेरी समझ में नहीं आती। ख़ैर ! तब क्या हुआ ?

शर्माजी

इच्छा हो रही है सुनने की न ? मनुष्य की जितनी रुचि दूसरों के दुःख की बातें सुनने की होती है, उतनी उनके सुख की नहीं।

बेनीमाधव

अजी तुम क्या हो गए ?

शर्माजी

हो क्या गया ?

बेनीमाधव

तुम्हारे दुःख की बातें सुनने में मेरा मनोरंजन होगा ?

शर्माजी

ज़रूर होगा। तुम्हारा नहीं, यह मनुष्य के स्वभाव का दोष है। अभी हम स्वभाव से ही क्रूर हैं। जब कोई दया की भिक्षा माँगता है, हम उसकी ओर देखकर मुँह बनाते हैं। जब कोई पत्र लिखकर हमारी सहानुभूति अपनी ओर खींचना चाहता है, हम उसका पत्र पढ़कर अपने मित्रों को सुनाते हैं, और कहते हैं—कैसा बेवकूफ है ..इसे दुनिया का अनुभव नहीं। जिसे हम दुनिया का अनुभव कहते हैं, वह हमारी सकीर्णता और हमारे स्वार्थ की अभिव्यक्ति है। हमारी सभ्यता तो बढ़ रही है . लेकिन हमारी मनुष्यता ..(चुप होकर एकटक बेनीमाधव की ओर देखने लगते हैं)।

बेनीमाधव

घट रही...यही न ?

शर्माजी

मुझे तो ऐसा ही मालूम हो रहा है। हमें ज़िंदगी का मज़ा नहीं मिलता और न तो हम कभी खुली हवा में साँस ले पाते हैं। प्रेम करने में भी पाप है, दान देने में भी पाप है। दुनिया के नब्बे फीसदी जो काम नहीं करते वह करना...लोग सदेह करते हैं कि यह प्रेम क्यों करता है, दया क्यों करता है, होगी कोई न कोई छिपी बात।

[मनोहर का प्रवेश]

क्यों जी क्या चाहते हो ? मास्टर साहब आए ?

मनोहर

हाँ आए हैं।

शर्माजी

कब आए ?

मनोहर

देर हुई।

शर्माजी

तुम्हें पढ़ा चुके ?

मनोहर

हाँ ।

शर्माजी

घर जा रहे हैं ?

मनोहर

अभी तो बैठे हैं ।

शर्माजी

तुम किसलिये यहाँ आए ?

मनोहर

(खड़ा होकर कुछ सोचने लगता है) कहते हैं पूछ आओ, कोई काम तो नहीं है ?

शर्माजी

अभी कह दो बैठे । तुम सिनेमा देखने नहीं गए ?

मनोहर

नहीं ले गईं ?

शर्माजी

क्यों ?

मनोहर

डाक्टर साहब थे ।

शर्माजी

उनके साथ गईं ?

मनोहर

हाँ...

शर्माजी

अच्छा जाओ । (मनोहर का प्रस्थान)

बेनीमाधव

कौन ? डाक्टर त्रिभुवननाथ ?

शर्माजी

हाँ।

बेनीमाधव

अब कहो ?

शर्माजी

क्या ?

बेनीमाधव

(उनकी ओर देख कर) डाक्टर त्रिभुवननाथ के साथ, जिसके बारे में रोज शिकायतें सुनी जाती हैं, उसके साथ। तुम बदनाम हो जाओगे ?

शर्माजी

बदनाम तो मैं काफ़ी हो चुका।

बेनीमाधव

इसलिये उसकी अब परवाह नहीं है। यही न ?

शर्माजी

वकील साहब! मैं समझ नहीं सकता आप क्या कह रहे हैं ? शिकायतें बराबर सच्ची नहीं होतीं और अगर हों भी, तो मैं क्या कर सकता हूँ। आप जानते हैं मेरा उन पर कोई अधिकार नहीं है, वह किसके साथ रहें और किसके साथ न रहें, किससे मिलें और किससे न मिलें, इस बारे में मैं क्या कर सकता हूँ ? जिस तरह मैं स्वतन्त्र हूँ, आप स्वतंत्र हैं, वह भी स्वतन्त्र हैं। जिस तरह मैं जिससे चाहूँ मिल सकता हूँ या आप जिससे चाहें मिल सकते हैं, उसी तरह वे भी जिससे चाहें मिल सकती हैं। मेरा विश्वास तो ऐसा है...मनुष्य का विकास उसके निजी अनुभवों पर ही होता है यह बात भी मानी हुई है कि सब के विकास का रास्ता एक नहीं है। सब का रास्ता अलग-अलग है, सब किसी को उस पर चलना पड़ता है, ठोकर खाना और गिरना यह

भी स्वाभाविक है। यही होता रहा है हो रहा है और होगा। कोई इसे रोक नहीं सकता ..इसलिये मैं इसकी चिंता नहीं करता।

बेनीमाधव

ख़ैर जो हो, तुम उनसे छुट्टी क्यों नहीं ले लेते ? क्या ज़रूरत है कि वे तुम्हारे साथ रहें। उनको तुम्हारे साथ रहने का कोई अधिकार भी नही है जिसे दुनिया या समाज स्वीकार करे।

शर्माजी

(कुछ सोच कर) दुनिया या समाज ऐं ? (चुप हो जाते हैं) मैं हर एक बात को व्यक्ति की नज़र से देखता हूँ। दुनिया या समाज की नजर से नहीं। व्यक्ति और समाज का द्वंद जहाँ कहीं हुआ है, जब कभी हुआ है, यह सच है कि व्यक्ति को बराबर दुःख उठाना पड़ा है किंतु यह भी सच है कि नैतिक विजय बराबर व्यक्ति की हुई है।। तुम्हारी दुनिया या तुम्हारे समाज ने ईसा, कन्फ़्यूसियस, सुकरात या मसूर के साथ क्या किया था ? तुम्हे ख़ूब मालूम है। समाज के अगुआ उस समय भी यही सोचते थे कि वे उचित कर रहे हैं मनुष्य जाति की दुःखमय कहानी जिसे हम लोग इतिहास कहते हैं—इन्हीं बातों से भरा पड़ा है। तुम्हारा समाज नहीं जानता कि उन्हें मेरे साथ रहने का अधिकार है या नहीं। लेकिन मेरा हृदय जानता है। मेरी आत्मा जानती है कि उन्हें मेरे साथ रहने का अबाध अधिकार है।

बेनीमाधव

क्यों ?

शर्माजी

सभी बातें कही नहीं जा सकतीं। मेरी स्थिति में अगर तुम होते तो तुम्हें पता चलता। मेरी स्त्री मर रही थी, मैंने चारों ओर देखा कोई मेरा सहायक नहीं मिला। इस देवी ने उस विपत्ति में मुझे सहारा दिया। मनुष्य जितना से जितना अधिक त्याग कर सकता है, उसने किया। सम्भव है लोगों को उसके चरित्र पर सदेह हो, लेकिन मेरी नज़र शायद

उधर न उठे। उसने मेरा उपकार किया यह सत्य है। इसलिये मैं उसका सदैव आभारी रहूँगा। इस अपने देश में कोई भी स्त्री यदि अंधविश्वासों और बेहूदी रूढियों को तोड़कर आगे बढेगी, तो लोग उस पर संदेह करेंगे। हम लोगों का नैतिक जीवन बहुत नीचे पहुँच गया है। हम जिधर नजर डालते हैं, बुराई छोड़कर और कुछ देख नहीं पाते।

बेनीमाधव

ख़ैर जो हो। मै यह नहीं चाहता कि लोग आपको झूठ-मूठ बदनाम करें। मुझे मालूम है। जब तक देवी जी आप के साथ रहेंगी, आपके चचा आप से बोलेंगे भी नहीं। इसमें हानि आपकी है। आप जो समझें। देवी जी आपको मिलीं कैसे?

शर्माजी

यह जान कर आप क्या करेंगे? जहाँ तक चचा जी की बात, मुझे उसकी इच्छा भी नहीं कि वह मुझसे बोलें। जिस दिन चाहूँगा उन्हें मजबूर होकर मेरा हिस्सा अलग करना पड़ेगा। लेकिन मैं यह चाहूँगा ही नहीं। अपने लिये परिवार को छिन्न-भिन्न करना, मुझे पसंद नहीं है।

[मनोहर को गोद में लेकर शर्मा जी के चचा काशीनाथ का प्रवेश। उनके पीछे तीन और आदमी हैं। जगई लालटेन लेकर सब के आगे है, जो मेज़ पर लालटेन रखकर दूसरे कमरे से कुर्सियाँ निकाल कर रखता है। शर्मा जी और वकील साहब कमरे में आते हैं। शर्माजी आगे बढ़कर काशीनाथ का पैर छूना चाहते हैं। काशीनाथ रेशमी पारसी कोटजो देहाती सिलाई होने के कारण भद्दा बना है, फेल्ट टोपी, मखमली किनारे की विलायती धोती और काले रंग का फुलसिलीपर पहने हैं।

काशीनाथ

नहीं—नहीं—मेरा पैर न छूना। अब तुमसे मेरा क्या नाता है?

[शर्माजी चुपचाप सिर नीचे कर खड़े हो जाते हैं]

काशीनाथ

वकील साहब ! सुना है यह अपने हिस्से के लिये दावा करने-वाले हैं। इसकी क्या जरूरत है, अपना अलग कर ले।

[उनके साथ के आदमी एक साथ कह उठते हैं]

ठीक कह लीं बाबू, इहे ठीक होई।

शर्माजी

जी नहीं, यह ग़लत बात है...मैं अपना हिस्सा नहीं चाहता।

काशीनाथ

सब लोग कह रहे हैं ग़लत कैसे है ? वकील साहब उस दिन आप भी तो कह रहे थे ?

[वकील साहब असमंजस में पड़ जाते हैं जो उनके चेहरे से साफ मालूम होता है।]

बेनीमाधव

(कुर्सी बढ़ाते हुए) बैठिए, सब ठीक हो जाएगा।

काशीनाथ

जी नहीं, मैं यहाँ बैठूँगा ? इस घर में ? मुशीजी बही इधर दीजिए तो...

(मुंशीजी बही मेज पर रखते हैं)। खोल दीजिए वह पन्ना वकील साहब देख लें। (मुंशीजी वह पन्ना खोलते हैं) देखिए तो वकील साहब ! इनके पढने में कुल कितना ख़र्च हुआ है ? मैंने साल-साल का हिसाब लिख दिया है।

बेनीमाधव

(बही पर नज़र दौड़ा कर) २०५६३।।≥) कुल मीज़ान है।

काशीनाथ

देखिए ! मीज़ान ठीक दिया गया है न ?

बेनीमाधव

(थोड़ी देर चुप रह कर) जी हाँ, ठीक है। आपका मीजान गलत होगा ?

काशीनाथ

गलत हो वकील साहब तो गुजर कैसे हो ? कोई रियासत तो है नहीं। रात-दिन मेहनत कर कमाता रहा और इनके पढ़ने का ख़र्च देता रहा। एक जोड़े जूते में जहाँ मेरा साल कटता था, वहाँ इनको आठ जोड़े लगते थे। मैं समझता था कोई अच्छी नौकरी पा जाएगे, इज्जत से रहेंगे, मेरी भी इज्जत बढ़ेगी। बारबार कहा 'सुराज' की फेर में न पड़ो। गांधी बनिया है, उसकी बात में न आओ। अंग्रेज़ न रहेंगे तो हमारे असामी हमें लूट लेंगे। कौन सुने। कितनी मेहनत से डिप्टी-कलक्टरी दिलाया। खट से इस्तीफा दे दिया और इज्जतदार के लड़के होकर चक्की पीसने जेलखाने गए। दो वर्ष के बाद निकले भी तो (**मनोहर की पीठ पर हाथ रख कर**) इसकी मा के रहते ही एक फाहशा औरत रख लिया। आज ही कलक्टर साहब कहते थे उस औरत को हटाकर उन्हें घर ले जाइए। आप लोग तो कहते ही थे, अब अफ़सर भी कहने लगे। कहिए न मैं कैसे लोगों को मुँह दिखाऊँ ?

मुंशीजी

सच बात है वकील साहब ऐसी हालत में कैसे भला...

काशीनाथ

वकील साहब ! पूछिए कैसे हिस्सा लगेगा। इस २०५६३॥≋) का हिसाब कैसे होगा ?

शर्माजी

(काशीनाथ की ओर देखकर) मेरे पास रुपया तो है नहीं कि इस समय मैं आपको दे सकू। शायद कभी होगा भी नहीं।

काशीनाथ

होगा क्यों नहीं। एक ही साथ के पढे वकील साहब सौ रुपया रोज़ कमाते हैं।

शर्माजी

मेरे पास रुपया कमाने का शऊर नहीं है। इसलिये नहीं होगा।

है ! उसी बीस हज़ार में.. ...

काशीनाथ

सिर्फ बीस हज़ार नहीं ५६३॥≈) और

शर्माजी

अच्छा उसी २०५६३ ॥≈) में मैं अपना सारा हिस्सा छोड़ दूँगा। कल आप मुझसे रजिष्ट्री करा लें।

बेनीमाधव

इनके हिस्से की आमदनी कितनी होगी ?

काशीनाथ

करीब सात हज़ार सालाना।

बेनीमाधव

तब तो हिस्से की मालियत उससे बहुत ज्यादा है।

काशीनाथ

हाँ, है तो !

शर्माजी

है तो क्या ! मुझे मंजूर है। मैं अपने सारे हिस्से की रजिष्ट्री कल कर दूँगा। आज आप रह जाइए।

बेनीमाधव

लेकिन कल तो आपका चुनाव है ?

शर्माजी

उससे ज़रूरी इस समय मुझे यही मालूम हो रहा...

[काशीनाथ मुंशी जी को अलग हटाकर सीढ़ी के पास खड़े होकर धीरे-धीरे कुछ बातें हैं...फिर लौटकर]

काशीनाथ

वकील साहब ! उस औरत को हटाकर पूछिए घर नहीं चलेंगे। अब तो जो होने को था हो चुका। घर पर खाने-कमाने को बहुत है। इन सब बातों की नौबत क्यों आए ?

बेनीमाधव

कहिए साहब। (शर्माजी की ओर देखते हैं)

शर्माजी

जी नहीं, मुझे घर नहीं जाना है।

काशीनाथ

अच्छी बात। तो मैं आज रह जाऊँगा। कल जो होने को हो...... हो जाय। आगे के लिये फिर झंझट न रहे।

आशादेवी

(नीचे से) जगई! जगई! लालटेन लाना।

[जगई दूसरे कमरे से लालटेन लेकर नीचे जाता है। शर्माजी चौंक उठते हैं, घबड़ा जाते हैं, उनका शरीर थरथरा उठता है। वे अपने को *सँभाल नहीं सकते और तेजी से स्वयं भी नीचे जाते हैं*]

काशीनाथ

यही वह औरत है क्या?

बेनीमाधव

जी हाँ!

काशीनाथ

कहाँ गई थी?

बेनीमाधव

डाक्टर साहब के साथ सिनेमा देखने।

काशीनाथ

कौन डाक्टर?

बेनीमाधव

वही, जिनकी दूकान कचहरी के पीछे है।

काशीनाथ

राम राम .उसके साथ। क्यों साहब! मोतीजान के साथ उसी का न नाजायज़ ताल्लुक था?

बेनीमाधव

जी हाँ।

काशीनाथ

उसके साथ! कैसी औरत है? देखते हैं कितना बेशर्म है। दौड़ा हुआ चला गया। वकील साहब! कल रजिष्ट्री करा लीजिए। नहीं तो यह सब इसी औरत के पीछे फूँक देगा।

मुंशीजी

बाबू, इनको क्या हो गया। पढ़ते थे तब कैसे थे। देख कर तबियत ख़ुश हो जाती थी।

काशीनाथ

अभी यहाँ आप रहेंगे वकील साहब?

बेनीमाधव

जी नहीं—मैं अब चलूँगा।

काशीनाथ

चलिए चलें। मेरी तो अब यहाँ पल भर रहने की तबियत नहीं चाहती। पचपन वर्ष की उम्र हुई। अब तक इज़्ज़त से निबहता आया। उँगली उठाने की किसी की हिम्मत नहीं हुई। आख़िरी बार यही दाग़ लगा।

मुशीजी

दाग़ क्या है बाबू? जो जैसा करेगा, पाएगा? आपका क्या बिगड़ेगा? देखते नहीं हैं, कहाँ वह गुलाब ऐसा चेहरा और कहाँ आज-कल मालूम हो रहा है जैसे तपेदिक हो गया है।

काशीनाथ

बिना बुलाए क्यों बोलते हैं मुशीजी—(डाटकर) जब बोलने का ढग नहीं आता, तो चुप रहा कीजिए। नालायक भी है, तो अपना है। तपेदिक उसके दुश्मन को हो। रजिष्ट्री मैं इसलिये कराऊँगा कि जायदाद बची रहे। आज नहीं कल खुद होश होगा, घर न जाएगा तो क्या करेगा?

वेनीमाधव

आप बहुत ठीक कह रहे हैं। घर न जाएँगे क्या करेंगे।

काशीनाथ

(मनोहर से) क्यों नाती चलोगे घर तुम ? (उसके सिर पर हाथ फेरते है)।

मनोहर

बाबू जी मारेंगे। वह ..नहीं जाएँगे तो मैं कैसे जाऊँगा।

काशीनाथ

वह नहीं जाएँगे, तुम चलो। घर पर गाय है, भैंस है, हाथी है। दूध पीना, हाथी पर चढ कर घूमना।

मनोहर

(जैसे कुछ याद कर) नहीं—नहीं—मा ने कहा था बाबू जी को रंज मत करना।

काशीनाथ

(उसे छाती से लगाकर) तुम्हें अपनी मा की बात याद है ?

मनोहर

(साँस खींचकर) हाँ—है याद।

काशीनाथ

वकील साहब ! अपना अपना ही है। घर में इस समय कोई लड़का नहीं है। सूना मालूम होता है और यह यहाँ पड़ा है। मनोहर चलो घर तुम।

मनोहर

नहीं—नहीं—छोड़िए। (मनोहर नीचे उतर कर कमरे के कोने में खड़ा होता है)।

काशीनाथ

अभी तक नहीं लौटा। इतनी बेशर्मी—वकील साहब चलिए।

[काशीनाथ वकील साहब और उनके साथ वालों का प्रस्थान।

मनोहर बेचैन हो कर इधर-उधर कमरे में भटकने लगता है। नीचे कुछ अस्पष्ट ध्वनि सुनाई पड़ती है]

काशीनाथ

नहीं—नहीं—मैं यहाँ नहीं ठहरूँगा। वकील साहब! मना कीजिए। कल रजिष्ट्री हो जानी चाहिए। पूछिए मैं रह जाऊँ न।

शर्माजी

रह जाइए. .कल हो जावेगा।

मनोहर

(मनोहर दरवाज़े के बाहर सीढ़ी तक जाता है फिर लौट कर) आ रहे हैं, आ रहे हैं, आ रहे हैं।

[दौड़ कर चुपचाप कुर्सी पर बैठ जाता है। शर्माजी और आशा का प्रवेश। शर्माजी अपने कमरे में जाकर कुर्सी पर बैठ जाते हैं। आशा इधर उधर कमरे में टहल कर बाहर खुली छत पर चली जाती है। मनोहर कभी छत की ओर देखता है तो कभी शर्माजी के कमरे की ओर। थोड़ी देर तक बिल्कुल सन्नाटा रहता है। आशा ऊपर हाथ उठा कर अंगड़ाई लेती है। धीरे-धीरे कुछ गुनगुनाने लगती है। शर्माजी के कमरे में किसी चीज़ के गिरने और झनक कर फूटने की जोर से आवाज होती है। आशा तेजी से भीतर जाकर लालटेन उठा कर उस कमरे में जाती है]

आशादेवी

(कोमल स्वर में) तस्वीर कैसे फूट गई? तबियत ख़राब है क्या? तब बोलते क्यों नहीं? अँधेरे में आकर यहाँ बैठ गए। चलें बाहर

[आशा और शर्माजी बाहर दूसरे कमरे में आते हैं मनोहर के पास की कुर्सी पर शर्माजी बैठते हैं—आशा वहीं खड़ी रहती है।]

शर्माजी

मनोहर सुनो।

[मनोहर उनके पास जाता है और वे उसे उठा कर अपनी जांघ पर बैठा कर उसे छाती से लगा लेते हैं। मनोहर सिसक-सिसक कर रोना

शुरू करता है और ज्यों ज्यों शर्माजी चुप कराते हैं त्यों-त्यों उसकी रुलाई बढ़ती जाती है।]

चुप रहो न रोओ (उसके सिर पर हाथ फेरते हुए) भूल गए तुम्हारी मा कह गई थी न कि बाबू जी का कहा मानना। (मनोहर रोना बंद करता है) क्यों रोते हो—बताओ!

मनोहर

रोने का जी चाहता है।

[जगई का प्रवेश]

जगई

भोजन तैयार है।

शर्माजी

मनोहर को ले चलो खिलाओ तब तक।

[जगई मनोहर को लेकर चला जाता है। दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं। थोड़ी देर सन्नाटा रहता है]

उमाशंकर

(आशा की उँगली पकड़ कर) चिंता कैसी?...

[आशा का शरीर काँप उठता है वह सिर झुका कर रोशनी की ओर देखने लगती है। रोशनी मे उसका सारा मुँह देख पड़ता है। उमाशंकर उसके मुँह की ओर देखने लगते हैं। आशा की आँखों से निकल कर कई बूंद आँसू मेज़ पर टपक पड़ते हैं।]

उमाशंकर

ऐं! रो रही हो? (उसका पूरा हाथ पकड़ कर खींचते हुए) इधर देखो।

[आशा अपना मुंह पीछे को फेर लेती है—उमाशंकर एकाएक खड़े हो कर एक हाथ से उसका मुंह रोशनी की ओर फेरते हैं और दूसरे में रूमाल लेकर उसकी आँखें पोंछते हैं। क्षण भर के लिए रूमाल से उसकी आँखें बंद कर उसके मुँह की ओर देखते हैं। आशा अपना सिर उनके कंधे पर रख देती है। क्षण भर सन्नाटा।]

आशादेवी

(एकाएक अलग होकर भर्राई हुई आवाज़ मे) आपके चचा जी यहाँ जो कहते रहे हैं—आपके बारे में या मेरे बारे में—मैं सब वहाँ सीढी पर खड़ी होकर सुनती रही हूँ—नीचे भी जो बातें हुई हैं—मैंने सुना है। मेरे लिये आप घर से अलग न हों। मैं यहाँ आई थी आपकी सेवा करने और सहायता करने। वह समय निकल गया। अब मेरी जरूरत नहीं है। मेरे लिये, सदैव के लिये घर की सम्पत्ति छोड़ देना...

उमाशंकर

(रूखे स्वर में) घर की सम्पत्ति मैं अपने लिये छोड़ रहा हूँ। अपनी मुक्ति के लिये। साम्यवाद की लहर आ रही है—देश की सम्पत्ति राष्ट्र की सम्पत्ति होगी—राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति की—धनी ग़रीब—यह बात मिटने वाली है अब तो वह युग आ रहा है जिसमें मनुष्य के समान अधिकार और समान कर्तव्य होंगे— स्वामी और सेवक, पूंजीपति और मज़दूर...इन बातों में पड़ कर दुनिया बहुत बिगड़ चुकी है। उसकी रीढ़ की हड्डी टूट चुकी है वह सीधी खड़ी नहीं हो सकती। समाज परिवर्तन नहीं क्रांति चाहता है। पुरानी इमारत की मरम्मत बहुत हुई—इतनी हुई कि अब उसमें दूसरी मरम्मत की जगह नहीं है। उसकी नींव हिल रही है—एक धक्का और साफ़। जो समाज की सच्ची भलाई चाहने वाले हैं। उनका काम है कि इस कमज़ोर नींव पर एक भी नई ईंट न रक्खें, उस पर और बोझ न लादें। या तो उसे छोड़ कर खुले आसमान के नीचे आ जायं...मनुष्य जाति की वह आदिम अवस्था जिसमें न धर्म, न अधर्म, न पाप, न पुण्य, न शिक्षा, न मूर्खता प्रकृति के जड़ नियमों में जड़ मनुष्य का जीवन, न घर, न परिवार, न समाज, न देश। कहीं कुछ नहीं। सब एक रस और नहीं तो फिर **(आवेश में)** इस इमारत को गिरा कर उसकी नींव खोदकर फेंक दे और उसकी जगह दूसरी इमारत की नींव डालें। पुरानी इमारत की एक ईंट भी इस नई इमारत में न लगे—नहीं तो वह बैठेगी नहीं।

[कुछ सोचने लगते हैं । आशा ध्यान से उनकी ओर देखने लगती है]

उमाशकर

(आशा की ओर देखते हुए) इतनी हैरान क्यों देख पड़ती हो .. मैं...शायद...हाँ घर वालों से नाता तोड़ कर या पुश्तैनी जायदाद को लात मार कर, मैंने उस युग का आज सच्चे दिल से स्वागत किया है। जिसमें मनुष्य केवल मनुष्य होगा—इस पुरानी इमारत की नींव से मैंने एक ईंट निकाल ली है । मैं गिराना चाहता हूँ । बनाने वाले दूसरे होंगे ?

आशादेवी

मनुष्य केवल मनुष्य होगा ?

उमाशंकर

हाँ—

आशादेवी

लेकिन मैं समझ नहीं सकी !

उमाशंकर

जो बात अब तक हुई नहीं, समझाई नहीं जा सकती । लेकिन यों समझो कि...हमारे और तुम्हारे या किसी के जीवन मे हमारी आंतरिक—प्रवृत्तियाँ हमारी आत्मा पर छोड दी जायँ । हम अपने ज़िम्मेदार रहें, अपने मालिक और अपने नौकर रहें ।

आशादेवी

हूँ—तो मैं कब जाऊँ ?

उमाशंकर

कहाँ जाना है ? तुम्हें अब कहीं जाना नहीं होगा ।

आशादेवी

नहीं मैं यहाँ नहीं रहना चाहती । मेरी आतरिक प्रवृत्तियाँ मेरी आत्मा पर छोड़ दी जायँ ।

उमाशंकर

समझ कर कह रही हो !

आशादेवी

हाँ..

उमाशंकर

इसका मतलब कि मैं और भी स्वतंत्र हो रहा हूँ। लेकिन शायद गर्ल्स स्कूल में अब जगह न मिले।

आशादेवी

मैं अब अध्यापिका नहीं रहूँगी। जब एक बार छोड़ दिया तो...

उमाशंकर

तब फिर...

आशादेवी

जो हो—[कमरे के बाहर खुली हुई छत पर जा कर बाहर देखती है।]

उमाशंकर

हूँ..

आशादेवी

यहाँ—आइए—यह देखिए...जल्दी...जल्दी।

उमाशंकर

(वहाँ जाकर) क्या है?

आशादेवी

(एक ओर हाथ उठा कर) वह देखिए...कोई...जैसे मनोहर की मा...वह सफेद साड़ी पहने।

उमाशंकर

कहाँ—कोई तो नहीं...

आशादेवी

देखिए, देखिए, आपको देख नहीं पड़ता?

[हाथों में अपना मुँह छिपा लेती है]

परदा गिरता है।

दूसरा अंक

[दोपहर । भीषण गर्मी । बाहर धू-धू कर लू चल रही है । दृश्य, वही कमरा । वही मेज़ और कुर्सियाँ । उसी तरह अव्यवस्थित । पिछले दरवाज़े से लगकर दाईं ओर की दीवाल के पास एक चारपाई बिछी है । आशा उस पर बैठकर जाने की तैयारी में ज़रूरी चीज़ें सूट केस में रख रही है । डाक्टर त्रिभुवननाथ का प्रवेश]

डाक्टर

यह सब क्या हो रहा है ?

आशादेवी

(सिर उठा कर उनकी ओर देखने लगती है फिर नीचे देखती हुई) बैठिए ।

डाक्टर

(कुर्सी खींचकर उसके पास बैठते हुए) कहिए ।

आशादेवी

(उनकी ओर देखती हुई रूखे स्वर में) क्या पूछ रहे हैं ?

डाक्टर

यह सब तैयारी......

आशादेवी

जी हाँ......मैं जा रही हूँ ।

डाक्टर

कहाँ . ...?

आशादेवी

वहाँ . .जहाँ ....मनुष्य न हों ।

डाक्टर

हूँ......लेकिन......क्यों ?

आशादेवी

पता नहीं......यहाँ रहने की तबियत नहीं चाहती। मेरा पत्र...

डाक्टर

(मुस्करा कर) पत्र क्या?

आशादेवी

वही जो रात आपने लौटा देने को कहा था।

डाक्टर

आप मेरा विश्वास नहीं करतीं......अब क्या?

आशादेवी

ओफ़—मेरा सब कुछ बिगाड़ कर, मेरे पास जो अमूल्य रत्न था उसे छीन कर, उस पर भी......उस पर भी डाक्टर साहब (बेचैन हो उठती है, आवाज़ भारी हो उठती है) अच्छा न दीजिए। याद रखिए। उस पाप की ज़िम्मेदारी मुझ पर है, लेकिन इसकी आप पर।

डाक्टर

किसके सामने?

आशादेवी

ईश्वर के?

डाक्टर

देवी जी!.. मैं नास्तिक हूँ।

आशादेवी

अच्छा मेरे . मेरे सामने उसकी ज़िम्मेदारी आप पर है। आपने मुझे लोभ में फँसा कर...

डाक्टर

लोभ में फँसा कर?—आपकी इच्छा नहीं थी? तब तो मेरे साथ बड़ा धोखा हुआ।

आशादेवी

[क्रोध से उसकी ओर देखने लगती है]

डाक्टर

रज होने की जरूरत नहीं है—समझने की ज़रूरत है। पुरुष कोई भी हो पुरुष है। स्त्री कोई भी हो स्त्री है।

आशादेवी

इसका मतलब ?

डाक्टर

यही कि जो शर्माजी, वही मैं...भेद सिर्फ नाम का है।

आशादेवी

देवता और राक्षस। भेद सिर्फ नाम का है ? बस अब आप यहाँ से चले जाइए।

डाक्टर

देवी जी ! कल आप मुझे धमकाने के लायक थीं—लेकिन आज नहीं हैं। आपके लिये मै पहला पुरुष हूँ। आपको मेरा सम्मान करना चाहिए।

आशादेवी

[अपने घुटनों के भीतर सिर दबा कर मुंह छिपा लेती है]

डाक्टर

[मुस्करा कर...कई बार सिर हिलाता है।]

आशादेवी

(डाक्टर की ओर देखती हुई) तो आप पत्र नहीं देंगे ?

डाक्टर

जी नहीं। मैं उसे आपकी यादगार में रखना चाहता हूँ। हाँ मैं किसी को दूगा नहीं...इसका मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ।

आशादेवी

लेकिन इसका विश्वास मैं कैसे करूँ ?

डाक्टर

आपकी खुशी। जितना पापी मुझे आप समझी हैं...उतना पापी

मैं नहीं हूँ। आपके साथ विश्वासघात अब मैं नहीं करूँगा। वह तो अपने ही साथ विश्वघात करना होगा।

आशादेवी

अपने ही साथ क्यों?

डाक्टर

मैं अब आपको अपनी समझता हूँ। मेरा जीवन बहुत बिगड़ चुका था—लेकिन अब नहीं बिगड़ेगा। मैं डूब रहा था...आपने मुझे बचा लिया। अब मैं किसी न किसी तरह किनारे जा पहुँचूंगा।

आशादेवी

लेकिन मैं तो डूब गई।

डाक्टर

इसे आप समझें। यह आपका पत्र है। (पत्र उसके सामने फेंक देता है) अब तो आप निश्चिन्त हुईं।

आशादेवी

(पत्र देखकर) जी हाँ...आपको धन्यवाद है।

डाक्टर

(उठते हुए) नमस्कार क्षमा कीजिएगा।

[डाक्टर का प्रस्थान]

[आशा वहीं चारपाई पर लेटकर अपने मुँह पर तकिया उठाकर रख देती है। उमाशंकर का प्रवेश।]

उमाशंकर

कैसी तबियत है?

आशादेवी

(उठ कर बैठती हुई) अच्छी है।

उमाशंकर

(सूटकेस की ओर हाथ उठा कर) तैयारी हो रही है क्या?

आशादेवी

जी हाँ—तीन बजे की गाड़ी से ।

उमाशंकर

इस लू में ? रात तबियत उस तरह ख़राब हो गई थी ।

आशादेवी

अब तो यहाँ...क्षण भर भी जी नहीं चाहता ..

उमाशंकर

मैं यह तो कहता नहीं कि आप रह जायँ । लेकिन एक बात है । (चुप होकर) मेरे पास इस समय रुपए नहीं हैं, आपको देने के लिये...

आशादेवी

मुझे देने के लिये रुपए ? हे ईश्वर .....

उमाशंकर

मैं चाहता हूँ.. सब से छुट्टी ले लेना...कोई अपना नहीं...... किसी तरह का बंधन..... अकेले मैं...और यह संसार चाहे जैसा रहे । इसके साथ समझौता मैं नहीं कर सकूगा । मैंने देख लिया......अच्छी तरह से, यह सम्भव नहीं । मैंने रजिष्ट्री कर दिया...... सारी जायदाद ......पढाई के ख़र्चे में......जिसके लिये पिता जी को वर्षों बाहर रहना पड़ा था । जिस चीज के पैदा करने में उनकी ज़िंदगी गई थी......मैंने योंही ख़ुशी से छोड़ दिया । करता ही क्या ? (चुप हो जाते हैं)

आशादेवी

(नीचे ज़मीन की ओर देखती हुई) इस पर भी मेरे रुपए की चिंता ?

उमाशंकर

हाँ, मैं और किसी का भी ऋणी रहना चाहता हूँ...लेकिन आपका नहीं ।

आशादेवी

मैंने क्या किया ?

उमाशंकर

शायद मैं कह न सकूंगा। क्या नहीं किया ? मेरे लिये अपनी नौकरी छोड़ कर...नहीं नहीं.. यह कहने की बात नहीं है। मेरे हृदय में कितने घाव हुए थे......वे सब भर गए.... इसी से...... सिर्फ इसी से। आप जा नहीं सकतीं.. . जब तक मैं आपका रुपया दे न दूँ।

आशादेवी

मैं तो आज जाऊँगी ?

उमाशंकर

तो आज ही रुपया भी दूँगा।

आशादेवी

मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। मनोहर कहाँ है ?

उमाशंकर

हो सकता है ..मुझे अपने साथ तो न्याय करना है।......मनोहर को घर ले गए हैं।

आशादेवी

आपके चचा जी ?

उमाशंकर

हाँ......

आशादेवी

जाते समय उसे देख भी न सकी। (हथेली पर सिर रख देती है)

उमाशंकर

अच्छा है . घर रहे। मेरे साथ रहने में उसे तकलीफ़...

आशादेवी

लेकिन जब आपने सारी जायदाद की रजिष्ट्री उनके नाम करा दी

तो क्या वह, वहाँ उनकी दया पर रहेगा ?

उमाशंकर

(कुछ सोचते हुए) जैसे रहे ! उसके भाग्य में जो होगा .... मनुष्य जो लेकर पैदा होता है .....वही .....कोई बदल नहीं... .. (आशा उठ कर दूसरे कमरे में जाती है) आदमी का जीवन और यह विराट् जगत.. ...समुद्र के बुलबुले उठे और बैठे ...

[देवकीनंदन और मुरारीसिंह का प्रवेश । मुरारीसिंह एक टाउन स्कूल के हेडमास्टर हैं । अल्पाके का घुटने तक लंबा कोट, जो कम से कम दस वर्ष पुराना है । मखमली किनारी की विलायती धोती जो कम से कम एक महीने की धुलाई है]

आइए (कुर्सियों की ओर संकेत कर) मास्टर साहब ! क्या हालचाल हैं ? मनोहर तो घर गया । अब आपको नहीं आना होगा ।

देवकीनदन

कब तक ?

उमाशकर

ठीक नहीं कह सकता । आपका परिचय !

देवकीनदन

आप रामगढ टाउन स्कूल के हेडमास्टर बाबू मुरारीसिह हैं ।

उमाशंकर

(नमस्कार कर) किसलिये..

मुरारीसिह

योंही...सरकार के दर्शन के लिये ।

उमाशकर

और कोई काम ?

मुरारीसिह

जी नहीं...सब आपकी कृपा !

देवकीनंदन

आपके चुनाव में आप बड़ी मिहनत कर रहे हैं। इधर पाँच दिनों से स्कूल बद कर और मास्टरों के साथ देहात में घूम-घूम कर आपने लोगों को समझाया है कि शर्मा जी के चुने जाने से यह फ़ायदा होगा—कच्ची सड़क पक्की हो जायगी। नाले पर पुल बन जाएगा। नए मरदसे खुलेंगे। मास्टरों की तनखाह बढ़ेगी।

उमाशंकर

बस चुप रहिए। क्यों साहब यह सच है ?

मुरारीसिंह

हुज़ूर...हम लोगों ने स्कूल बंद कर देहातों में लोगों को यह सब समझाया है। जहाँ तक बन पड़ा है रात दिन...

उमाशंकर

तब तो आपको बड़ी तकलीफ़ हुई।

मुरारीसिंह

जी नहीं सरकार। आप चुन लिये जायँ तो हम लोगों का नसीब बन जाय।

उमाशंकर

मेरे चुने जाने से आप लोगों का क्या फायदा होगा ?

मुरारीसिंह

हुज़ूर यह मैं कैसे कहूँ—मुझे यक़ीन है।

उमाशंकर

आपको यक़ीन है कि मदरसे में मैं आप लोगों के लिये सिंहासन बनवाऊँगा ?

मुरारीसिंह

नहीं सरकार...

उमाशंकर

तब क्या ?

मुरारीसिंह

हुज़ूर तो जिरह कर रहे हैं।

उमाशंकर

मास्टर साहब! थोड़ी देर के लिये आप नीचे जाइए।

[देवकीनंदन का प्रस्थान]

सिंह जी आपको तनख़ाह मिलती है—लड़कों को पढ़ाने के लिये या चुनाव में कवेसिंग करने के लिये?

मुरारीसिंह

(भय से) हुज़ूर जब से चुनाव हो रहा है। मैं यह बराबर करता हूँ और साहब लोग बराबर ख़ुश होते रहे हैं। हुज़ूर अपनी तरक्की के लिये कौन आदमी मिहनत नहीं करता?

उमाशंकर

तो इस तरह की मिहनत आप बराबर करते रहे हैं?

मुरारीसिंह

हुज़ूर यह हम लोगों का काम है। आप लोग बने रहेंगे तो हम लोगों का भी गुज़र होगा।

उमाशंकर

लेकिन आप मेरे लिये कोशिश क्यों कर रहे हैं—दो आदमी और खड़े हुए हैं। शायद उनमें से कोई चुन लिया जाय तब?

मुरारीसिंह

हुज़ूर जैसी मेरी तकदीर हो, इसके लिये कोई क्या करेगा। इसके लिये मैंने सत्यनारायण की कथा मानी है कि आप हो जायँ। हुज़ूर से मुझ ग़रीब को बड़ा फायदा होगा?

उमाशंकर

मुझसे? फायदा होगा?

मुरारीसिंह

उम्मीद तो हुज़ूर से ऐसी ही है।

उमाशंकर

अगर आप मेरे लिये कोशिश सचमुच कर रहे थे—तो इस समय आपको पोलिंगस्टेशन पर रहना चाहिए या...यहाँ आने की क्या ज़रूरत थी ?

मुरारीसिंह

(घबड़ाकर) यह तो...ग़लती हो गई ..हुज़ूर ज़रूर ।

उमाशंकर

हूँ......आपके मदरसे में कितने मास्टर हैं ?

मुरारीसिंह

हुज़ूर पाँच ।

उमाशंकर

सभी मेरे लिये कोशिश कर रहे हैं ?

मुरारीसिंह

जी नहीं .....एक ऐसे भी महाशय हैं जो कहते हैं कि इन चीज़ों से हम लोगों को क्या मतलब ? चेयरमैन कोई हो...हमारा काम पढ़ाना है...पढ़ाते चलना चाहिए। यहाँ तक इधर हम लोगों ने स्कूल बंद कर दिया, इसीलिये कि जो कुछ हो सके आपके लिये कोशिश कर दें...तो आप रज हो गए और अपने दर्जे के लड़कों को छुट्टी नहीं दी . मालूम हुआ कि तीन ही दिन में पढ़ाकर लड़कों को बी० ए० पास करा देंगे ? अब देखें हुज़ूर क्या करते हैं ?

उमाशंकर

उनका नाम क्या है ?

मुरारीसिंह

जगदीश तिवारी ।

उमाशंकर

हूँ ..पुराने मुदर्रिस हैं ।

मुरारीसिह

नहीं साहब—मैंने पढा कर तो अभी उसे मिडिल पास कराया। इधर दो वर्षों में नार्मल हो आया है।

उमाशकर

तो अभी नए आदमी हैं . तेज़ होंगे। मालूम होता है कि आपसे उनकी पटती नहीं।

मुरारीसिह

जो आप लोगों के काम का नहीं होगा . हुज़ूर उससे मेरी पटेगी कैसे ?

उमाशकर

अच्छा अब आप जाइए...जरा उन्हे भेज दीजिएगा.. मास्टर साहब को।

मुरारीसिह

हुजूर...मुझे भूल न जाएँगे . शायद .

उमाशकर

जी नहीं—अगर मैं चेयरमैन हो गया तो सबसे पहले आपही को याद करूँगा।

[मुरारीसिंह का नमस्कार कर प्रस्थान]

उमाशंकर

(दूसरे कमरे के दरवाजे पर जा कर) क्या सोच रही हो ?

आशादेवी

यही कि मेरी जिंदगी का क्या होगा।

उमाशकर

यह कोई बहुत बड़ी समस्या तो नहीं है। जो हो। काल के अनत प्रवाह में मनुष्य का जीवन है क्या ? तिनके की तरह बहता चला जा रहा है।

आशादेवी

लेकिन इसी में सतोष तो नहीं हो सकता।

उमाशंकर

सतोष करना चाहिए न ?

[देवकीनदन का प्रवेश]

देवकीनंदन

क्या आज्ञा है ?

उमाशंकर

(घूम कर) मैं तो अगर चुन लिया जाऊँगा तो मुरारीसिंह को बरखास्त करूँगा !

देवकीनदन

बेचारे ने बड़ी मिहनत की है...आपके लिये।

उमाशंकर

इसीलिये तो—

[डाक्टर साहब का प्रवेश]

इस धूप में ?

डाक्टर

जी हाँ.. आपको आगाह करने। आप लोगों का विश्वास जल्दी कर जाते हैं। वकील साहब आपको वोट नहीं देंगे। मेरे सामने उन्होंने सेठ से पाँच सौ रुपया लिया है।

उमाशंकर

बेनीमाधव जी ने ? उस निरक्षर को वोट देंगे—जो ठीक दस्तख़त भी नहीं कर सकता उसको ?...

डाक्टर

जी हाँ...उसको।

उमाशंकर

मुझे धोखा देंगे ? इसका विश्वास तो मुझे नहीं...

डाक्टर

आपको विश्वास हो या न हो। आपको मेरी बात में सदेह हो तो

कोतवाली के पोलिङ्ग स्टेशन पर चले जाइए। वहीं गए हैं—जहाँ तक उनसे हो सकेगा किसी को भी आपके लिये वोट नहीं देने देंगे।

उमाशंकर

लेकिन क्यों?

डाक्टर

पहली बात तो यह है कि मुफ़्त में पाँच सौ रुपए मिल गए, और दूसरी बात यह है कि सेठ से और भी बहुत तरह का मतलब सधेगा। आप उनके किस काम आएँगे?

उमाशंकर

ओफ़! हमारे देश के पढ़े-लिखे लोग भी वोट बेचते हैं?

डाक्टर

जी हाँ...इन्हीं लोगों के बल पर स्वराज्य का शोर हो रहा है।

उमाशंकर

ठीक कहते हैं.. स्वराज्य अभी बहुत दूर है। ख़ैर चलिए कोतवाली मैं चलूँगा—देखूँ...मुझे धोखा...अपने मित्र को?

डाक्टर

आप ज़बरदस्ती मित्रता का नाता निबाहना चाहते हैं। दुनिया कितनी ठोस है...आप नहीं जानते।

[उमाशंकर, डाक्टर का हाथ पकड़ कर दूसरे कमरे में सामने के दरवाज़े के पास ले जाकर धीरे-धीरे कुछ कहते हैं।]

डाक्टर

चलिए अभी...मेरे पास है . ले आइए।

उमाशंकर

(कुछ सोच कर) ख़ैर...... चलिए! डाक्टर साहब! मनुष्य का जीवन क्या से क्या हो गया!

डाक्टर

रोने के लिये ज़िंदगी में बहुत कुछ है। इसे जितना ही भूला

रहे .....इसीलिये तो मैं हँसता रहता हूँ।

.उमाशंकर

चलिए अभी आ रहा हूँ।

[डाक्टर का प्रस्थान। उमाशंकर दरवाज़ा पकड़कर बाहर आकाश की ओर देखने लगते हैं। आशा का प्रवेश]।

आशादेवी

(उनके नज़दीक जाकर) डाक्टर से रुपया लेंगे?

उमाशंकर

(उसी ओर देखते हुए) हाँ—

आशादेवी

मुझे देने के लिये?

उमाशंकर

हाँ।

आशादेवी

हूँ. तो मैं सब ओर से गई?

उमाशंकर

क्यों? (उसकी ओर देखने लगते हैं)

आशादेवी

(उनकी ओर देखकर) आप जानते नहीं। इस डाक्टर ने आपका कितना नुकसान किया है।

उमाशंकर

मेरा नुकसान......डाक्टर ने?

आशादेवी

हाँ, जिस दिन आप जानेंगे।

उमाशंकर

सुनूँ भी।

आशादेवी

मैं नहीं कहूँगी—शायद कहने के पहले मेरी जीभ गिर पड़ेगी।

उमाशंकर

(ध्यान से उसकी ओर देखने लगते हैं, आशा सिर नीचे कर लेती है) बात क्या है? इस तरह काँप क्यों रही हो? जहाँ तक मैं जानता हूँ, डाक्टर ने कोई बुराई नहीं की मेरी।

आशादेवी

(साँस खींचकर) ईश्वर करे यही सच हो . लेकिन कैसे? अगर मैं यह कह पाती।

उमाशंकर

किसी ने मुह तो नहीं बद किया है।

आशादेवी

मेरे हृदय ने—मेरी आत्मा ने...

उमाशंकर

मैं यह पहेली समझ नहीं सकता—[प्रस्थान]

आशादेवी

(अपनी जेब से एक शीशी निकालती है) आठ बूँद और मेरी मुक्ति। आठ बूँद। (शीशी का कार्क ज़रा सा हिलाकर सूँघती है—नाक मुँह सिकोड़ कर कईबार काँप उठती है। दूसरे कमरे से शीशे की छोटी ग्लास में दो घूँट पानी लाती है। कभी ग्लास के पानी की ओर देखती है तो कभी शीशी की ओर। शीशी का कार्क खोलकर ग्लास में उड़ेलती हुई) आठ बूद, एक.. दो तीन...चार (उसका हाथ काँपने लगता है और सारी शीशी उलट पड़ती है। वह थोड़ी देर तक ग्लास की ओर देखती रहती है—कभी तो हाथ नज़दीक लाकर और कभी दूर फैलाकर। थोड़ी देर तक गहरी चिंता में फिर एकाएक उत्साह से।) बस यहीं...अब क्या। (ग्लास को ओठ से लगाकर—मुँह में एक घूँट पानी—लेकिन उसी दम तेज़ी से दरवाज़े की ओर बढ़ना और कुल्ला कर देना। ग्लास

मेज पर रख देती है।) जगई ! जगई !!

जगई

(नीचे से) आया।

आशादेवी

हाँ वहीं से कहो आया। इधर न आना।

[जगई का प्रवेश]

यह मेरा बिस्तर जल्दी बाँध दो (चारपाई की ओर हाथ उठाती है)

जगई

अभी बड़ा घाम है।

आशादेवी

(ज़ोर से) बहस क्यों करते हो ?

जगई

(बिस्तर बटोरता हुआ) घाम है—इसमे लूह...

आशादेवी

डरो मत तुम्हें स्टेशन नहीं जाना होगा।

जगई

कौन ले जाएगा ?

आशादेवी

इक्का, टाँगा जो मिले।

जगई

और लारी...बस्स...जल्दी जाना हो तो

आशादेवी

लारी में कई आदमी के साथ बैठकर.. नहीं...नहीं इक्का या टाँगा लाना . पूरा किराया कर।

जगई

(बिस्तर बाँध कर) तो जाऊँ न ?

आशादेवी

कहाँ—(जैसे बड़ी देर के बाद होश में आई हो।)

जगई

टाँगा के लिये, इक्का...

आशादेवी

(कुछ सोचकर) हाँ, जाओ—देर न करो। जल्दी लाओगे तो इनाम दूँगी।

जगई

अभी लाया। [तेज़ी से निकल जाता है। आशा ग्लास उठाकर एक बार और ओठ से लगाती है—लेकिन व्यर्थ पी नहीं पाती। निराश होकर गहरी चिंता में ग्लास मेज़पर रखती है। नीचे मनोहर की आवाज़ सुन पड़ती है।]

मनोहर

कहाँ जा रहा है? बाबू जी हैं...देवी जी... कोई नहीं है। नहीं आएगा? मैं अकेले रहूँगा? अच्छा न आ। लौटेगा तब पूछूँगा।

[आशा चौंक कर उठती है। ग्लास उठाकर पी जाती है। दरवाज़े के बाहर सड़क की ओर देखती है फिर घूमकर पीछे, सीढ़ी की ओर देखती है।]

मनोहर

(सीढ़ी के नीचे से) कोई नहीं है...मैं अकेले रहूँगा? अनाथालय में...अनाथालय में...लड़कों से साथ...किसी की मा नहीं है...वहाँ सब लड़के. मैं भी उसी में। [मनोहर का प्रवेश]

आशादेवी

(दौड़कर मनोहर को गोद में उठाती हुई) तुम आ गए... आ गए! मेरे जाने के पहले—(उसका सिर अपनी छाती से लगाकर) मेरे बच्चे! मुझ से भेंट करने के लिये। तुम्हें मालूम हो गया कि मैं जा रही हूँ। वहा (ऊपर हाथ उठाकर) तुम्हारी मा के यहाँ।

मनोहर

जा रही हो ? मा के यहाँ।

आशादेवी

हाँ .

मनोहर

कब ?

आशादेवी

आज...अभी ?

मनोहर

तुम बीमार तो नहीं हो ?

आशादेवी

(मुस्करा कर) मैं ? तुम क्यों आए...घर न जा रहे थे ? अपने बाबा के साथ।

मनोहर

मैं नहीं जाऊँगा। अपने तो गद्देवाली गाड़ी में बैठे और मुझे दूसरी गदी गाड़ी में...उसमें चमार चिलम पी रहे थे—उसी में थूकते थे—(पीठ पर हाथ रखकर) यहाँ मेरी पीठ पर पड़ गया.. ... . मैं गाड़ी से निकाल आया—सीटी बजी "भों" "धुक...धुक" धूआ निकला...मैं वहीं खड़ा रहा गाड़ी निकल गई। चले गए। अब मुझे नहीं पाएँगे। बाबू जी तो अपने साथ गद्देवाली गाड़ी में बैठते हैं। मैं नहीं जाऊँगा...नहीं जाऊँगा...भेजेंगे तो गाड़ी से कूद पड़ूगा...मर जाऊँगा।

आशादेवी

मैं जा रही हूँ...तुम्हारी मा के पास...दो घटे मे चली जाऊँगी !

मनोहर

मुझे भी ले चलना।

आशादेवी

(उसे छाती से लगा कर) नहीं लाल! तुम यहाँ दुनिया मे फूलो

फलो। लोग तुम्हारी इज़्ज़त करें। मैं तुम्हारी मा से कह दूँगी कि तुम बड़े हो रहे हो। पढ़ रहे हो। बड़े अच्छे लड़के हो। जब तुम स्कूल जाओगे तो मैं तुम्हारी मा के साथ (ऊपर हाथ उठा कर) वहाँ बहुत ऊपर खड़ी होकर तुम्हारी राह देखूगी।

मनोहर

और जब स्कूल से लौटूगा. तब भी?

आशादेवी

हाँ तब भी। (उसे नीचे उतार कर) घूम रहा है। मकान घूम रहा है न। मनोहर! .जैसे बिजली घर में चक्का घूमता है। (नीचे ऊपर हाथ घुमा कर वृत्त बनाती हुई) इस तरह...इस तरह...इस तरह। (कुर्सी पर बैठ कर मेज पर सिर टेक देती है। मनोहर आश्चर्य से उसकी ओर देखता है।)

मनोहर

बीमार पड़ गई—मा के पास जाने के लिये। जाड़ा लगता है... कोई चीज ओढा दूँ...(दौड़ कर दूसरे कमरे से कम्बल ला कर उसके ऊपर डाल देता है, फिर उसकी पीठ को ज़ोर से दबा कर) अब नहीं जाड़ लगेगा (उसका पैर पकड़ कर ऊपर उठता है) कुर्सी पर रख लो...इसे जड़ा रहा है...काँप रहा है।

[जगई का प्रवेश]

जगई

टाँगा आ गया।

आशादेवी

(कम्बल फेंककर) एँ आ गया? चलो जल्दी चलो। हाँ...बिस्तर, सूटकेस ले लो, एक लोटा भी। (उठ कर खड़ी होती है...उसके मुँह से ज़ोरों का पसीना चल रहा है। रह-रह कर आँखें खुलती है और बंद होती हैं। चलना चाहती है, लेकिन पैर सीधे नहीं पड़ते, लड़खड़ाती हुई दो क़दम आगे बढ़ती है। जगई सामान उठाता है)

मनोहर

कहाँ जा रही हो ?

आशादेवी

अपने घर ..

मनोहर

कहाँ है घर ?

आशादेवी

संसार के उस पार जहाँ कोई नहीं...कोई नहीं...ओफ़ आग लगी है। पानी। एक लोटा जल्दी पानी! (जगई चारपाई पर सूट केस और बिस्तर रख कर नीचे दौड़ कर जाता है। आशा वहीं ज़मीन पर सिर थाम कर बैठ जाती है) मनोहर! मनोहर!

मनोहर

(उसके पास जाकर) क्या है ? (उसकी पीठ पर हाथ रखता है)

आशादेवी

भाग जाओ ..भाग...जाओ...आग . लगी ., जल जाओगे... जल...जा...ओ... ।

[पानी लेकर जगई का प्रवेश]

जगई

हाँ...पानी...

आशादेवी

(अपने सिर पर हाथ रख कर) यहाँ गिराओ. जल्दी करो।

[जगई उसके सिर पर पानी गिराने लगता है।]

टाँगावाला

(बाहर से) देर हो रही है सरकार! गाड़ी नहीं मिलेगी।

आशादेवी

(गाड़ी नहीं मिलेगी ?) चलो...चलो...जल्दी करो... (उठ कर अपना बाल पीछे की ओर फेंक देती है। आगे बढ़ कर कमरे के बाहर

सीढ़ी के पास जाती है।)

मनोहर

(दौड़कर उसका हाथ पकड़ता है) कहाँ जाओगी ? इसी तरह भीगे कपड़े।... (उसका हाथ पकड़ कर खींचता है।)

आशादेवी

(उसके साथ कमरे में आकर) तुम्हारी मा . ...तुम्हारी मा...... वह देखो......नहीं देखते।

[एकाएक चुप हो जाती है—मनोहर भय से उसकी ओर देखता है। जगई बाहर जाना चाहता है।]

मनोहर

मैं अकेले रहूँगा—? देखता नहीं यह जा रही हैं मा के पास—जा.. जा ..मैं अकेले रहूँगा ..बाबू जी को बुला ला। जल्दी जल्दी।

आशादेवी

(सम्भल कर) नहीं नहीं...मुझे कुछ नहीं नहीं हुआ है . उन्हें न बुलाना...न बुलाना ! देवता के सामने—मेरा पाप। देव ! देव ! मेरे अनत जीवन के उपास्य देव ! उन्हें नहीं...... उन्हें नहीं।

मनोहर

(चिल्लाकर) क्या कह रही हो ?

आशादेवी

(धीरे से हाथ हिलाकर) कुछ नहीं, डरो मत, तुम्हारी मा की तरह मैं यहाँ फिर न आऊँगी।

मनोहर

मा आती हैं ?

आशादेवी

हाँ, रात को, रोज़ जब आधी रात होती है। तुम सो जाते हो। तुम्हारे बाबू जी भी सो जाते हैं, मुझे नींद नहीं आती......तब। तब

तुम्हारी मा आती है, मैं रोज़ उससे वादा करती हूँ, उसके पास जाने के लिये .....लेकिन ..

मनोहर

मेरे लिये आती होगी ? तुम्हारे लिये नहीं ।

आशादेवी

(एक बार कमरे में चारों ओर देखती है—जैसे कोई भी चीज़ वह नहीं पहचान पाती । रह-रह कर उसके मुँह पर भय और विस्मय की रेखा दीख पड़ती है । मनोहर मारे डर के थर-थर काँप रहा है ।) तुम्हारे लिये......नहीं......मेरे लिये मैंने जो किया......कहते हैं मर जाने पर कोई नहीं आता । मकान उड़ा जा रहा है ...ऊपर .....ऊपर.. आसमान में । (अपनी देह पर तेज़ी से इधर-उधर हाथ फेरती हुई) चींटी......चींटी . ...बहुत काट रही हैं, बहुत ।

[डाक्टर का प्रवेश]

डाक्टर

(आशा के मुँह की ओर देखकर चौंक जाते हैं) ऐं ? (आगे बढ़कर आशा की ओर देखते हुए) आँखे काली पड़ रही हैं नसे तन गई हैं—(एकाएक मेज़ पर से एक छोटी शीशी उठाकर देखते हुए) यही न... यही न जरूर...मैं डरता था । (ज़ोर से) ज़हर खा लिया ?

आशादेवी

नहीं. अमृत · अमृत...

डाक्टर

(उसकी नाड़ी देखते हुए) कितनी देर हुई ?

आशादेवी

(कोई जवाब नहीं देती जमीन पर लड़खड़ा कर बैठ जाती है ।)

डाक्टर

(तेजी से दूसरे कमरे में जाते हैं) जगई—टाँगा रोको जाने न पाए नहीं ठहरो । (एक स्लिप लेकर प्रवेश) शर्माजी को यह देना...

जब आएँ—उसी समय। मनोहर तुमने कोतवाली देखा है?
(जगई स्लिप लेता है।)

मनोहर

जहाँ बंदूक लेकर सिपाही खड़े रहते हैं? जहाँ फ़ुहारा है?

डाक्टर

हाँ वहीं। चले जाओ। अपने बाबूजी से कहना कि डाक्टर साहब देवीजी को अस्पताल ले गए हैं।

मनोहर

डाक्टर साहब देवीजी को . कहाँ?

डाक्टर

अस्पताल ले गए हैं—अस्पताल। समझे?

मनोहर

हाँ.. यह तो मा के पास जा रही हैं...वहाँ न ले जाओ।

डाक्टर

जगई। इनका एक हाथ पकड़ तो।

(जगई एक हाथ पकड़ता है दूसरा हाथ डाक्टर खुद पकड़ कर आशा को उठाते हैं—और धीरे-धीरे सीढ़ी की ओर ले चलते हैं। आशा जाना नहीं चाहती।)

डाक्टर

सम्हाल कर जगई!...सम्हाले रहिए गिरी क्यों जा रही हैं? जाओ मनोहर! तुम जल्दी।

मनोहर

[मनोहर को छोड़कर सब का प्रस्थान—(मनोहर शीशी उठाता है—उसे इधर-उधर उलट-पलट कर देखता है।) ज़हर खा लिया! मा के पास जाने के लिए। मैं भी खा लूँगा। कहती है मकान आसमान में उड़ रहा है। आग लगी है। ओह! ओह!

[जगई का प्रवेश। मनोहर दरवाजे के बाहर सड़क की ओर देखता है।]

वह ताँगा गया। डाक्टर साहब पकड़े हुए हैं। घोड़ा खूब दौड़ रहा है। सरपट...सरपट...

जगई

जाते हो बाबूजी के यहाँ...या सरपट...सरपट ..करते रहोगे ?

मनोहर

(घूमकर) बाबूजी के यहाँ ?

जगई

डाक्टर साहब नहीं कह गए ?

मनोहर

(सोचकर) क्या कह गए ? क्या कह गए ? बता दो। बता दो।

जगई

बता क्या दूँ ? न जाओ। चपत खाओगे तो याद पड़ेगा।

मनोहर

बताओ—जगई...हूँ।

जगई

अब कभी नहीं न मारोगे ?

मनोहर

नहीं...कभी......नहीं......बता दो ?

जगई

बाबूजी से कोतवाली में जाकर कह दो कि डाक्टर साहब देवीजी को अस्पताल ले गए......आप भी जाइए जल्दी।

मनोहर

तुम जाकर कह दो ... मैं भूल जाऊँगा ?

जगई

यहाँ रहोगे अकेले ?

मनोहर

हाँ रहूँगा......जाओ !

जगई

तुम डरोगे। यहाँ भूत आता है।

मनोहर

तुमको नहीं पकड़ेगा?

जगई

मैं उससे लड़ाई करूँगा...और तुम, तुमको उठा कर चला जाएगा।

मनोहर

अच्छा—क्या कहूँगा?

जगई

बाबू जी से कहना कि डाक्टर साहब देवीजी को अस्पताल ले गए। उन्होंने ज़हर खा लिया है।

मनोहर

ज़हर क्या होता है जी!

जगई

जिसे मरना होता है—खा कर मर जाता है।

मनोहर

देवीजी मर जाएँगी? अच्छा होगा मा के पास चली जाएँगी!

जगई

बाबू जी सुनेंगे तो मारेंगे।

मनोहर

क्यों?

जगई

देवीजी का मरना वह नहीं चाहते। सुनेंगे तो मारेंगे!

मनोहर

हूँ.. तब नहीं कहूँगा।

जगई

जाओ बाबू...जल्दी करो। अस्पताल भेजो उन्हें।

[मनोहर का प्रस्थान]

ज़हर खा गई। बाबू जी से झगड़ा हो गया इसीलिये घर जा रही थीं। मर जाती तो अच्छा होता! डाटने लगती हैं। मलकिन कितना मानती थीं। कभी कड़ा नहीं बोलती थीं। कहती थीं आदमी का दिल दुखेगा। इनको तो दिन भर बाल झाड़ना और बाँधना रहता है। उस पर रोब गाँठती हैं। लोग बाबूंजी की शिकायत करते हैं। उनके साथ रहने से...

उमाशंकर

(नीचे से तेज आवाज़ में) क्या हुआ?

मनोहर

डाक्टर साहब अस्पताल ले गए!

उमाशंकर

किसको?

मनोहर

देवीजी...ज़हर।

उमाशंकर

जहर—?

[उमाशंकर और मनोहर का प्रवेश]

उमाशंकर

क्या हुआ रे?

जगई

(जल्दी से) अस्पताल जाइए अस्पताल। देवीजी जहर...[उनकी ओर देखने लगता है]

उमाशंकर

ज़हर खा गई।

जगई

जी हाँ—डाक्टर साहब अस्पताल ले गए। यह चिट्ठी है। (स्लिप देता है)

उमाशंकर

[स्लिप लेते हैं—उनका हाथ काँपने लगता है। तेज़ी से दूसरे कमरे में जाते हैं—फिर लौट कर दौड़ते हुए सीढ़ियों से उतर जाते हैं—जगई और मनोहर एक दूसरे की ओर देखने लग जाते हैं।]

मनोहर

(कुछ सोच कर) मा को तो अस्पताल नहीं ले गए।

जगई

उन्होंने ज़हर नहीं खाया था न ? वह बीमार थीं।

मनोहर

बीमार थीं। मैं बीमार नहीं पड़ूँगा जगई ?

जगई

तुम ? राम न करे बीमार पड़ो बाबू।

मनोहर

मैं बीमार पड़ूँगा। क्यों नहीं—क्यों नहीं बीमार पड़ूँगा जगई ?

जगई

चुप रहो ! कोई आता है ! नीचे आवाज होती है।

[जगई का प्रस्थान]

[मनोहर इधर-उधर कमरे में घूमता है—मुँह बना कर सीटी बजाता है बेनीमाधव और काशीनाथ का बातें करते हुए प्रवेश]

बेनीमाधव

बड़ा बुरा हुआ।

काशीनाथ

बुरा क्या हुआ वकील साहब—वह मर जाएगी तो वह आदमी हो जाएगा। देखा आपने मैं रोकता ही रह गया...लेकिन रजिष्ट्री

कराने पर तुल गया। मैंने भी सोचा कि जब इसकी यही नीयत है, तो मैं क्यों रोकूं। कहिए न आप ही कोई भी दूसरा आदमी मेरे इतना समाता कर सकता है?

बेनीमाधव

बड़ी बदनामी होगी—(दोनों कुर्सी पर बैठते हैं। मनोहर दूसरे कमरे में जाकर छिप रहता है।)

काशीनाथ

अब तक बदनामी नहीं हुई?

बेनीमाधव

कलक्टर नाराज़ है, मौका पाने पर छोड़ेगा नहीं.. और अब इससे बढ़ कर दूसरा मौका क्या होगा?

काशीनाथ

अगर वह उसे बेक़सूर कह कर सभी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ले?

बेनीमाधव

दुनिया अपने को बचाती है...दूसरे का ख़्याल नहीं करती। देखिए वह कह देगी कि उन्होंने ज़हर दिया!

काशीनाथ

इसमें शक नहीं कि वह बदचलन औरत है। लेकिन वह अपना ख़्याल कहीं करेगी...उसी को बचाएगी। देखा नहीं आपने उस दिन जब मैं उमाशंकर से बातें कर रहा था...उसकी आँखों से चिनगारी निकल रही थी। मुझे तो मालूम हो रहा है वह उसे सचमुच मुहब्बत करती है।

बेनीमाधव

लेकिन यह तो और भी बुरा है।

काशीनाथ

मैं भी इसे भला नहीं कहता...लेकिन बात कुछ ऐसी ही है। इस

वक्त तो अगर वह मर जाय तो मैं सत्यनारायण की कथा कहलाऊँगा।

बेनीमाधव

(मुस्करा कर) सचमुच ?

काशीनाथ

जी हाँ! उसने मेरा घर बिगाड़ दिया।

बेनीमाधव

उसने आपका घर नहीं बिगाड़ा।

काशीनाथ

(आश्चर्य से) क्या कहते हैं ?

बेनीमाधव

यही कि उसने आपका घर नहीं बिगाड़ा।

काशीनाथ

तब किसने बिगाड़ा ?

बेनीमाधव

बिगाड़ने को था . खुद बिगड़ गया।

काशीनाथ

देखिए साहब ! मैं नसीब नहीं मानता। जो जैसा काम करता है, फल पाता है.. कलक्टर साहब यही कहते हैं।

बेनीमाधव

(हँस कर) जी हाँ, आप तो वही न करते हैं...जो कलक्टर साहब कहते हैं।

काशीनाथ

क्या बुरा करता हूँ...इसीलिये तो वे मुझे इतना मानते हैं। है कोई दूसरा जमींदार इस जिले में जिसकी वह इतनी इज्जत करते हों ? उनकी बात तो दूसरी ही है...मेम साहब भी बराबर हाथ मिलाती हैं और अपने बराबर बैठने के लिए कुर्सी देती हैं। आपसे सच कहता हूँ, अगर मेरा लिहाज़ नहीं करते तो कलक्टर साहब उमाशंकर को फिर

जेल भेज देते। एक दिन मेम साहब यही कह रही थीं।

बेनीमाधव

कभी मेम साहब ने आपको चाय पिलाया है या नहीं? सच कहिएगा।

काशीनाथ

(उनकी ओर देख कर मुस्कराते हैं।) आप भी दिल्लगी करते हैं।

बेनीमाधव

जी नहीं, बिल्कुल नहीं। मेम साहब जिसकी इज्जत करती हैं, उसे चाय ज़रूर पिलाती हैं।

काशीनाथ

(सहम कर) ख़ैर आपसे क्या झूठ बोलूँ...मुझे कई बार उन्होंने चाय...(चुप हो जाते हैं)

बेनीमाधव

हाँ...हाँ...कहिए...इसमें हर्ज़ क्या है? चाय में क्या दोष है? रेलगाड़ी में बैठकर पूड़ी खाने से बुरा तो है नहीं। उसमें कौन नहीं बैठा रहता मुसलमान या भगी।

काशीनाथ

(कुछ सोचते हुए वकील साहब का हाथ पकड़ लेते हैं) आर्य-समाजी सच कहते हैं। छूआछूत में कोई दोष नहीं है...सफाई होनी चाहिए। पारसाल मैंने मेम साहब को डाली दी थी...बड़े दिन में एक हज़ार रुपया ख़र्च हुआ था...आठ सौ रुपए की तो एक अँगूठी थी। रुपया है किस लिए। इज्ज़त के लिये तो मैं अपनी देह बेंच दूँगा।

बेनीमाधव

जी हाँ, सच है। (कुछ सोच कर) देखिए तकदीर। आज मैं सेठ जी के लिये कोशिश करता ही रह गया, लेकिन मेरे मुअक्किल भी बहक कर इन्हें वोट दे आए। कहते थे सब गाधी बाबा के चेला हैं।

काशीनाथ

आपने यह नहीं कहा कि एक बदचलन औरत अपने साथ लिये है ? कहना चाहिए था।

बेनीमाधव

मैंने कहा...लेकिन सुनता कौन ? गांधी का जादू ऐसा चल रहा है कि जिसने गांधी टोपी लगाई...बस वह गांधी बना।

काशीनाथ

कलक्टर साहब भी कह रहे थे कि गांधी बड़ा अच्छा आदमी है।

बेनीमाधव

लेकिन उमाशंकर तो उन्हें देवता समझते हैं...कहते हैं कि वह भगवान के अवतार हैं।

काशीनाथ

भगवान का अवतार, बनिया ?

बेनीमाधव

जी हाँ, कहते हैं।

काशीनाथ

जाने दीजिए, कुबस है। मैं तो उसकी ओर देखना नहीं चाहता। वह तो वह देखिए उसके मनोहरा को गाड़ी से निकल कर भाग आया !

मनोहर

(दूसरे कमरे से निकल कर) भाग आया . तो क्या ? अपने तो गद्देवाली गाड़ी में बैठे और मुझे . ...

काशीनाथ

गद्देवाली गाड़ी में बैठोगे ? खाने को नहीं मिलेगा !

मनोहर

नहीं मिलेगा तो अनाथालय में चला जाऊँगा।

काशीनाथ

अनाथालय में ? उठाकर फेंक दूंगा नीचे मर जाओगे।

मनोहर

फेंक दो...मर जाऊँगा तो मा के यहाँ चला जाऊँगा !

काशीनाथ

इधर चलो। (डांटकर) चलो इधर।

मनोहर

नहीं. ....नहीं आऊँगा !

काशीनाथ

नहीं आओगे ?

मनोहर

कहता तो हूँ नहीं।

बेनीमाधव

(मुस्कराकर) नेता का लड़का है। दिल्लगी नहीं है। डरेगा नहीं।

काशीनाथ

(क्रोध से मनोहर की ओर देखते हुए) घर नहीं चलेगा ?

मनोहर

नहीं।

काशीनाथ

कहाँ रहेगा ?

मनोहर

यहीं बाबूजी के साथ।

काशीनाथ

लेकिन वह तो जेल जाएँगे ? चक्की पीसने तब—

[मनोहर सन्न होकर उनकी ओर देखने लगता है]

बेनीमाधव

बोलो तब क्या होगा ?

मनोहर

कुछ नहीं।

काशीनाथ

तब किस के साथ रहोगे ?

मनोहर

अकेले...... •

काशीनाथ

तब मेरे यहाँ चलना पड़ेगा। नहीं तो पेट पचक जाएगा।

मनोहर

तुम्हारे यहाँ तो नहीं जाऊँगा...चाहे मर जाऊँ ? तुम से हाथ नहीं जोड़ूगा...मा ने कहा था किसी से हाथ न जोड़ना।

काशीनाथ

तुम्हारी मा ने कहा था ?

मनोहर

हाँ...

काशीनाथ

कब ?

मनोहर

रात को ..जिसके दूसरे दिन (छत की ओर हाथ उठा कर) वहाँ मर गई और लोग उठा ले गए।

[दरवाज़े पर सिर रख कर दोनों हाथों में मुँह छिपा लेता है।]

काशीनाथ

वकील साहब ! वह मेरे घर की लक्ष्मी थी। चार वर्ष वहाँ रही .. लेकिन कभी उसकी बोली नहीं सुन पड़ी। ऐसा नहीं हुआ कि किसी नौकर को कभी उसकी परछाईं भी देख पड़ी हो। अगर वहाँ रहती तो मरती भी नहीं।

वेनीमाधव

लेकिन आपने आने क्यों दिया ?

काशीनाथ

न पूछिये। क्या कहूँ। मैं आने नहीं देता था . उसने मेरे पास चिट्ठी लिखी कि मुझे जाने दीजिए। अपने आराम के लिये मैं उनसे अलग नहीं रहूँगी। उनकी सेवा करने से मेरा परलोक बनेगा। इस तरह की बहुत-सी बातें थीं, लक्ष्मी थी लक्ष्मी।

[डाक्टर त्रिभुवननाथ का प्रवेश]

बेनीमाधव

क्या हाल है डाक्टर साहब ?

डाक्टर

किस चीज़ की ?

बेनीमाधव

तो छिपा रहे हैं। हम लोगों को मालूम है; कि उन्होंने जहर खा लिया

डाक्टर

हाँ तब ?

बेनीमाधव

पूछ रहा हूँ कि क्या हाल है ?

डाक्टर

(रूखे स्वर में) ज़हर निकल गया है.. बच जाएँगी।

बेनीमाधव

और अगर मुक़दमा चले तब ? ज़रूर चलेगा...

डाक्टर

मेरा काम था उनका प्राण बचाना। मुक़दमा चलाना आपका काम है।

बेनीमाधव

हूँ.. चलेगा मुक़दमा ज़रूर डाक्टर साहब ?

डाक्टर

कल चलेगा न ? आज तो नहीं न चलता। आज हम लोगो को दूसरी चिंता है...मुक़दमें की नहीं। 'चलेगा मुक़दमा तो देखा जाएगा...

वेनीमाधव

लेकिन उन्होंने जहर क्यों खा लिया ?

डाक्टर

इसका जवाव मैं क्या दू ?—उनकी तबियत।

वेनीमाधव

उन्हें ज़हर मिला कहाँ ?

डाक्टर

यह सब जान कर आप क्या करेंगे ?

वेनीमाधव

लेकिन मेरे जान लेने से आपका विगड़ेगा क्या ?

डाक्टर

मेरा क्यों वने विगड़े साहव ? जहर खाया उन्होंने। जानना चाहते हैं...आप......मुझ से क्या मतलव ?

वेनीमाधव

सिवा आपके उन्हें जहर मिला कहाँ होगा ?

डाक्टर

जी हाँ ..मैंने ही दिया था। और कुछ ?

वेनीमाधव

इसका मतलव कि फिर आप भी जाएँगे ?

डाक्टर

हो सकता है। आप दूसरे की वात के लिए इतने परेशान क्यों हो रहे हैं ?

बेनीमाधव

इस बात से मेरे मित्र से कुछ सबंध है...इसलिये...

डाक्टर

आज कोतवाली में मित्र के लिए वोट क्यों नहीं दिया ? वकील साहब ! मित्रता दिल से होती है.. ज़बान से नहीं। जो बन पड़े कर दे···बहुत कहने से क्या फायदा ?

काशीनाथ

जाने दीजिए साहब क्या जरूरत...फज़ूल की बकबाद। हम लोगों से कोई मतलब नहीं डाक्टर साहब। उनकी इज़्ज़त बनाने के लिए तो आप यहाँ ··

डाक्टर

आप पर तो बस इज़्जत का भूत...इसीलिए जिस समय वह जेल में पड़े थे...आप कलक्टर की दावत कर रहे थे...जिसने उनको सज़ा दी थी।

काशीनाथ

(क्रोध से डाक्टर की ओर देखते हुए) आप होश में हैं या नहीं ?

डाक्टर

आप जो समझें। लेकिन सच तो यह है कि आज जिस घड़ी आपने उनकी जायदाद की रजिष्ट्री अपने नाम से · उसी वक्त से मैं होश में नहीं हूँ। आप उनके सगे चचा हैं और आपका काम यह ?

पर्दा गिरता है।

तीसरा अंक

[रात। सब ओर सन्नाटा। वही कमरा। मेज़ और कुर्सियाँ निकाल दी गई हैं बाहर छत पर। कमरे में बीचो-बीच, मसहरी के भीतर चारपाई पर आशा सो रही है। उसके पैताने थोड़ी दूर हटकर स्टूल पर मोमबत्ती जल रही है। बाहर छत पर, कुर्सी पर उमाशंकर बैठे हैं, उनके पास इधर-उधर कुर्सियों पर कागज पड़े हैं। उनके सामने कुछ दूर पर लालटेन जल रही है जिसकी तेज़ रोशनी उनके मुह पर पड़ रही है। लेकिन लालटेन नहीं देख पड़ती। बाएँ हाथ की केहुनी कुर्सी की बाँह पर टेक कर हथेली पर सिर और दाँया हाथ सीधा कुर्सी की दूसरी बाँह पर पड़ा है। बाएँ हाथ की उँगलियाँ बालों के भीतर घुस गई हैं।]

[तेज़ी से जगई का प्रवेश]

उमाशकर

(उसकी ओर देखकर) धीरे से...जाग जाएँगी।

जगई

(उनके नजदीक आकर) वकील साहब ..

उमाशकर

आए हैं?

जगई

जी .हाँ .

उमाशकर

(कुछ सोचकर) इस समय...? क्या जरूरत?

जगई

कहते हैं थोड़ी देर के लिए।

उमाशंकर

अच्छा भेजो .. कह देना पैर दबाकर आएँगे ?

[जगई का प्रस्थान]

उमाशंकर

[कुर्सी पर का कागज उठाकर धीरे से ज़मीन पर रखते हैं और उठकर कुर्सी ठीक करते हैं ।]

[बेनीमाधव का प्रवेश]

बेनीमाधव

(कुर्सी पर बैठते हुए) बधाई ।

उमाशंकर

किस बात की सरकार ?

बेनीमाधव

दावत दो दावत—चेयरमैन चुन लिए गए, अब क्या ?

उमाशंकर

आपकी कृपा .

बेनीमाधव

मैंने तुम्हारे लिये इतनी कोशिश की लेकिन तुम्हें सुबहा है कि..

उमाशंकर

(सिर हिला कर) नहीं. नहीं . कौन कहता है...अगर आप लोग मेरे लिये कोशिश नहीं करेंगे . तो कौन ?

बेनीमाधव

मैंने तो बड़ी कोशिश की यों अगर ..

उमाशंकर

(हाथ उठा कर) धीरे से. (आशा की ओर इशारा करते हैं ।)

बेनीमाधव

मैं कहता था...तुम फजूल के लिये परेशान होगे उनके साथ—योंतो बदनामी थी ही...अब और···

उमाशकर

उस विषय की बात न करें। बहुत कहा सुना गया उस बारे में...उसे फिर उठाना ..नहीं नहीं बदनामी होती है तो हो।

बेनीमाधव

जिनको तुम्हारी भलाई का ख़्याल होगा . ज़रूर कहेंगे। मैं तो कहता ही रहूँगा, क्योंकि...मुझे तुम्हारी भलाई...

उमाशंकर

लेकिन अब मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। कृपा कर इस विषय में अब आप लोग चुप रहें।

बेनीमाधव

(कुछ सोचकर) ख़ैर...नहीं कहूँगा। लेकिन इन्होंने जहर क्यों खा लिया?

उमाशंकर

फिर वही बात। उस विषय में कुछ नहीं...।

बेनीमाधव

लेकिन समाज में इस तरह ··

उमाशंकर

मैं कई बार कह चुका हूँ ..समाज की चिता आप न करें। वह ऐसा ही...सदैव से है। वही मनुष्य...वही उसका दिल और दिमाग़... बुराई - भलाई सब ऐसी ही। और फिर मैं...अपने साथ प्रयोग कर रहा हूँ...समाज का छोड़ देना मुझे क़बूल है...लेकिन उसका नहीं। भेंड़ की तरह आँख मूँद कर बराबर सीधे चलता जाना .. मुझे यह पसद नहीं है। मैं तो इन दिनों अपनी ज़िंदगी की प्रयोग शाला में बैठा हूँ...बाहर क्या हो रहा है...सुनना या देखना नहीं चाहता।

बेनीमाधव

लेकिन लेबोरेटरी से भी बाहर निकला जाता है...

उमाशंकर

ठीक है...लेकिन वह लेबोरेटरी अपने खून माँस की या अपने शरीर की नहीं होती . इस लेबोरेटरी से निकलना...सहज नहीं है।

बेनीमाधव

हूँ.. लेकिन अगर इसमें हानि हो...

उमाशंकर

हानि तो होगी ही..... लेकिन बिना उसके प्रयोग भी तो पूरा नहीं होगा। बोतल की शराब न जला कर मैं अपने हृदय की शराब जला रहा हूँ...वह प्रयोग जिस दिन पूरा होगा...वकील साहब (उत्साह से) उस दिन मैं सच्चा मनुष्य हूँगा।

बेनीमाधव

अच्छी बात है। बनो सत्य मनुष्य।

उमाशंकर

आप मेरी चिंता न करें। मैं अपना रास्ता जानता हूँ...वकालत खाने के बाहर कोई ठीक रास्ता आप शायद नहीं जानते। मैं अपना रास्ता ख़ुद निकाल रहा हूँ.. सम्भव है ठोकर लगे...कहीं ऊबड़-खाबड़ में गिर भी पड़ूँ.. लेकिन अगर रास्ता मालूम हो जाएगा...तो...सारा परिश्रम ..

बेनीमाधव

अच्छा जाने दो . (हाथ उठा कर) यह बँगले के सामने की सड़क ज़रा जल्दी मरम्मत करा देना...।

उमाशंकर

क्यों...

बेनीमाधव

अब भी...चेयरमैन होकर भी नहीं...। हम लोगों को, यहाँ आने में कितनी तकलीफ होती है।

उमाशंकर

(उनकी ओर देख कर) चेयरमैन इसीलिये हुआ जाता है कि सब से

पहले अपने बँगले के सामने की सड़क मरम्मत करा दे। कैसे आप लोग यह सब सोचते हैं ?

बेनीमाधव

हम लोग दुनिया के मामूली आदमी हैं। समझते हैं, पहले नजदीक से काम शुरू करना चाहिए।

उमाशंकर

मैं तो पहले इस बँगले के पीछे जो गली है उसकी मरम्मत कराऊँगा।

बेनीमाधव

यह जिसके दोनों ओर चमार और बसफोर बसे हैं।

उमाशंकर

हाँ . . बरसात में बेचारों को बड़ी तकलीफ़ होती है। घुटने तक कीचड़ हो जाता है। शायद जब से ये सब यहाँ बसे होंगे कभी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने इस पर एक खाँची मिट्टी भी नहीं डाली होगी। बोर्ड के शानदार मेंबरों ने कभी इसका ख़्याल ही नहीं किया।

बेनीमाधव

तब तो उनका दिमाग़ और आसमान पर चढ़ जाएगा। यों तो बरसात में साईस घुड़सार में सोते भी हैं...तब तो ..

उमाशंकर

तब आप सोइएगा। अपना काम...

बेनीमाधव

जी हाँ, हम लोग घास करेंगे...लीद फेकेंगे...क्यों यही न ?

उमाशंकर

तो इसमें हर्ज क्या है ? टाँगे पर चलेंगे आप और . ...

बेनीमाधव

लीद फेंकेगा कौन ? कह डालो ! तुम लोगों के स्वराज्य में लोगों की इज्ज़त तो रहेगी नहीं ..यह तो मालूम...बात है !

उमाशंकर

आप लोग इज़्ज़त का ठीक मतलब नहीं समझते।

बेनीमाधव

ज़रा सुनूँ भी तुमने क्या समझा है?

उमाशंकर

मेरी समझ में तो असली इज़्ज़त मनुष्य की इज़्ज़त करने में है.. किसी को उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ दबा कर उससे वह काम लेना जो ख़ुद नहीं कर सकते...

बेनीमाधव

हुज़ूर तनख़ाह दी जाती है, मुफ़्त नहीं।

उमाशंकर

इसीलिये साम्यवाद का तूफ़ान उमड़ा चला आ रहा है। आप लोगों को अभी नहीं सूझता, किसी दिन रूस की हालत होगी...तब कहा जाएगा...ग़रीबों ने जुल्म किया, लूट लिया...फूँक दिया...मार डाले वह नौबत क्यों आने पाए, आप लोग पहले ही से सम्हल जाइए।

बेनीमाधव

अब बंदूक का लाइसेंस जल्दी मिल जाता है, कोई हर्ज़ नहीं। मैं तो वही...

ढोल गँवार शुद्र पशुनारी, ये सब ताड़न के अधिकारी—गोसाईं जी ने समझ कर लिखा था। मैं तो यही समझता हूँ ठीक है। इनके साथ मेहरबानी किए नहीं कि ये सिर चढ़े।

उमाशंकर

बदूक का लाइसेंस वहाँ भी था। (कुछ सोच कर) वकील साहब! मनुष्य बनना सीखिए।

बेनीमाधव

क्षमा कीजिए। मैं उपदेश नहीं चाहता। इसीलिये यहाँ के किसी भी प्रतिष्ठित आदमी ने आपको वोट नहीं दिया। सब को मालूम है कि

आप अमीरों के लिये कुछ नहीं करेंगे।

उमाशकर

अमीरों के लिये बहुत हो चुका है अब कुछ ग़रीबों के लिये होना चाहिए। मुझे इसकी इच्छा ही क्यों हुई? केवल उन्हीं के लिये। केवल ग़रीबों के लिये। उनकी हालत जब तक सुधारी नहीं जा सकती... तब तक देश......देश के सर्वस्व वही हैं . उन्हीं से देश है।

बेनीमाधव

इसका मतलब यह कि अगर कहीं दुर्भाग्य से आप स्वतत्र भारत के नायक चुने जायँ तो आप अमीरों को निकाल बाहर करेंगे।

उमाशंकर

देखिए इधर...स्वतत्र भारत अभी स्वप्न है। मामूली बात में इतने आगे बढ़ जाना... ..यहाँ अमीरों के निकाल देने का सवाल नहीं . ग़रीबों के बसाने का सवाल है। इतने बड़े ससार में उनके लिये कहीं आशा है या नहीं? देखना यह है।

बेनीमाधव

मेरी समझ में तो नहीं है .वे इस लायक नहीं...पशुओं का गरोह।

उमाशकर

मेरी समझ में तो है। उन्हें पशु बनाया किसने?

बेनीमाधव

(रूखे स्वर में) किसने...?

उमाशकर

हम लोगों ने .. हम लोग जो अपने को सभ्य, शिक्षित और प्रतिष्ठित कहते हैं। (कुछ सोचने लगते हैं)

बेनीमाधव

(उनके मुँह की ओर देखकर) मुझे ऐसी आशा नहीं थी।

उमाशंकर

(चौंक कर) ऐं कैसी आशा थी ?

बेनीमाधव

यही कि आपसे हम लोगों की हानि होगी।

उमाशंकर

ऐसी आशा तो मुझे भी नहीं है कि मुझ से आप लोगों की हानि होगी।

बेनीमाधव

तुम कह क्या रहे हो समझ में नहीं आता।

उमाशंकर

क्या ?

बेनीमाधव

तुम समझो—हम लोगों के ख़िलाफ तुम इन गँवारों को भड़काओगे (थोड़ी देर रुककर) वे हमें धक्का देते चलेंगे। बात-बात में जवाब देंगे तुम... तुम यह करोगे ? तुम्हें वोट देकर या तुम्हारे लिये कोशिश कर मैंने..... (चुप हो जाते हैं)

उमाशंकर

ग़लती की...शायद यही कहना चाहते थे। लेकिन मुझे मालूम है न तो आपने मेरे लिये कोई कोशिश की और न मुझे अपनी ही वोट दी। इसका उलाहना देना मैं नहीं चाहता था लेकिन मजबूर होकर इसका दुःख भी नहीं है। मैं जानता हूँ आप लोगों का मतलब मुझसे नहीं निकलेगा। इसलिये अगर आप लोग मुझे वोट न दें तो कोई बुराई नहीं। हम लोग अपने सिद्धांत के लिये लड़ना नहीं जानते। हर एक बात को व्यक्तिगत बना कर बिगाड़ देते हैं। आपके जो सिद्धांत हैं...वही आपके लड़कों के भी हों...आपकी स्त्री के हों आपके मित्रों और संबधियों के भी हों। क्यों ? सब कोई विचारों में आपके ग़ुलाम क्यों हों ?

बेनीमाधव

इसलिए कि समाज की इसी में भलाई है।

उमाशंकर

बिल्कुल नहीं...समाज में बुराई इसीलिये बढ़ रही है कि दस-पाच गुमराह जो सोचते हैं कि उन्हीं का कहना और सोचना ठीक हो सकता है सब जगह अपना ही सिक्का देखना चाहते हैं। औरों को न सोचने देते हैं, न कहने देते हैं। इसका नतीजा ? ज्यों-ज्यों लोगों का हक़ छीना जाता हैं. .थोड़े आदमियों पर उसका बोझ पड़ता जाता है। वे अब अपना अलग समाज बना लेते हैं। दुनिया की सभी अच्छी चीजें, धन, दौलत, पद, मर्यादा, सब प्रकार की सुविधाएँ सुदर मकान सुदर सड़कें, एक शब्द में (रुककर) जो कुछ उपयोगी और शानदार सब उनके लिये और बचे हुए . . . .मनुष्य . . जैसा आपने . . .. कहा था......पशु.. ..गंवार . असभ्य नालायक.. ...। (एकाएक खड़े होकर टहलने लगते हैं।)

बेनीमाधव

(उनकी ओर उपेक्षा की नज़र से देखकर) दुनिया स्वर्ग नहीं होगी।

उमाशंकर

(नज़दीक आकर) इसलिये नरक हो जाय ?

बेनीमाधव

नरक तो है ही।

उमाशकर

समझने की बात है।

बेनीमाधव

देखता हूँ कैसे स्वर्ग बनाते हो ?

उमाशकर

आप देख नहीं सकेंगे। आपकी आँखों ने अब तक जो देखा है... उससे आगे नहीं बढ़ सकेंगी। आप लोगों ने अपनी जज़ीरों को फूलों

से सजा दिया है—इसलिये कि ख़ूबसूरत देख पड़ें। उन्हें तोड़कर एक बार बाहर निकल आइए, यहाँ खुले आसमान के नीचे और तब देखिए अपनी ओर और उन गँवारों या पशुओं की ओर जिन्हें आप कहते हैं...वही मनुष्य, वही हृदय, मस्तिष्क, वही जिंदगी......वही ज़रूरतें—(उत्तेजित स्वर में) यहाँ आइए . ...' बस देखिए दुनिया स्वर्ग हो उठती है या नहीं।

बेनीमाधव

(कुछ सोच कर) नहीं—मैं यहाँ नहीं रह सकता......ऐसी बातें ओफ ...सिर में चक्कर आने लगा। (उठते हैं)

उमाशंकर

(उनका हाथ पकड़ कर) चक्कर क्यों आने लगा? अपने मतलब के लिये इतनी ज्यादती... मनुष्य होकर—(उनका हाथ हिलाकर) सब के भीतर ईश्वर है किसी का रास्ता न रोको। मनुष्य बनो। तुम्हारा हृदय तो अच्छा है लेकिन संस्कार......

बेनीमाधव

जाने दो इस बात को। (आशा की ओर इशारा कर) ज़हर मिला कहाँ?

उमाशंकर

फिर वही बात? कितने महत्व की बातें हो रही थीं। बिगाड़ दिया .

बेनीमाधव

इसके बतलाने में क्या हर्ज़ है?

उमाशंकर

उस विषय में मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता। (मनोहर का सीढ़ियों के ऊपर निकलना हाथ उठा कर) धीरे से।

मनोहर

[पैर दबा कर उनके पास आता है कुछ कहना चाहता है।]

उमाशंकर

(हाथ उठा कर) चुप जाग जाएँगी।

बेनीमाधव

डाक्टर साहब तो कह रहे थे . उन्होंने ज़हर दिया था !

उमाशंकर

झूठ...हो नहीं सकता।

बेनीमाधव

ख़ुद कह रहे थे। आपके चचा भी थे वहीं. सब के सामने ? अगर मुक़दमा चला तो डाक्टर साहब फँसेंगे।

उमाशंकर

मुक़दमा आज नहीं न चल रहा है ?

बेनीमाधव

नहीं.. लेकिन. .

उमाशंकर

लेकिन की जरूरत नहीं है..आज उसकी बात मैं नहीं सुनूंगा मुकदमा चलेगा...आप से राय माँगूगा तो कहिएगा। अभी नहीं। आज तो मैं शांति से...

बेनीमाधव

आपको मालूम होना चाहिए.. मैं सरकारी वकील हूँ.. यह मामला मेरे ही हाथ में...

उमाशंकर

ठीक है, तब जिसे चाहिएगा.. फाँसी दे दीजिएगा। इस धमकी की ज़रूरत अभी नहीं है।

बेनीमाधव

कभी पड़ेगी।

उमाशंकर

जब पड़ेगी देखी जायगी। इस समय आप क्षमा करें।

बेनीमाधव

मैं तुम्हारी भलाई चाहता हूँ।

उमाशंकर

(पैर पटक कर) चुप रहिए—मैं अपनी भलाई नहीं चाहता। एक बात और है आज से आप दोस्ती की बातें करने न आया करें। मैं बहुत हैरान

बेनीमाधव

(क्रोध से देखते हुए) मेरा अपमान.. इस तरह ..मित्र होकर.. अच्छा।

उमाशंकर

मित्र होकर नहीं . शत्रु होकर···गोकि मेरी निजी भाषा मे यह शब्द नहीं है। धीरे से जाओ।

[बेनीमाधव का ज़ोर से पैर पटकते हुए प्रस्थान]

उमाशंकर

(कुर्सी पर बैठकर) क्या है ? कहो..

मनोहर

मास्टर साहब आए हैं...

उमाशंकर

आए हैं ? नीचे हैं ?

मनोहर

हाँ...

उमाशंकर

कोई और है ?

मनोहर

मास्टर साहब और एक आदमी और...उस दिन जो आए थे ! मास्टर साहब के साथ।

उमाशंकर

मुरारीसिंह हेडमास्टर। अच्छा चलो आ रहा हूँ।

[मनोहर का प्रस्थान]

(कुछ देर तक सोच कर) मनुष्य की अहमन्यता...

[खड़े होकर ऊपर देखने लगते हैं। दो चार बार इधर-उधर टहलते हैं कुर्सी पकड़ कर खड़े होते हैं और बाएँ हाथ की उँगलियों से कई बार अपना सिर ठोंकते हैं फिर कमरे में आकर आशा की चारपाई के पास खड़े होकर उसकी ओर देखते हैं। धीरे-धीरे कई बार मसहरी हिलाते हैं। थोड़ी देर रुक कर—उसकी चारपाई के पास झुक कर कुछ आहट लेना चाहते हैं। आशा करवट बदलती है। उमाशंकर सीधे खड़े होते हैं। थोड़ी देर चुपचाप खड़े रहते हैं और फिर धीरे-धीरे नीचे चले जाते हैं। (थोड़ी देर सन्नाटा) आशा कई बार करवट बदलती है—चारपाई मरमरा उठती है।]

आशादेवी

जै शिव...जै शिव (चारपाई पर उठकर बैठती है। मसहरी हटाकर बाहर निकलती है। उसके बाल इधर-उधर मुँह पर, कंधे पर, छाती पर और पीठ पर तितर-बितर, मुँह सूखा हुआ और पीला मालूम हो रहा है। बाहर छत की ओर जाना चाहती है, लेकिन दो क़दम चलने के बाद वहीं फर्श पर बैठ जाती है।)

[मनोहर का प्रवेश]

मनोहर

(उसे देखकर) जाग गईं, तब तो मारेंगे...(पीछे लौटना चाहता है)

आशादेवी

(हाथ हिला कर उसे बुलाती है। मनोहर चुपचाप खड़ा हो जाता है उसके पास नहीं जाता) आओ...सुनो!

मनोहर

बाबू जी मारेंगे?

आशादेवी

क्यों ?

मनोहर

कहेंगे जगा दिया।

आशादेवी

नहीं...मैं कह दूँगी...तुमने नही।

[मनोहर उसके पास जाकर खड़ा होता है, आशा उसके कंधे पर हाथ रखती है]

मनोहर

कहो।

आशादेवी

कुछ नहीं...यहीं खड़े रहो।

मनोहर

मा के पास नहीं जाओगी ?

आशादेवी

(उसके कंधे को ठोकते हुए) अभी नहीं...(उसके मुँह की ओर देखने लगती है।)

मनोहर

कहती तो थी जाने के लिये। जाने को कहो तो तुम्हें मा कहूँगा।

आशादेवी

अब मैं तुम्हारी मा नहीं हो सकती.. ..मैं अब......उसके लायक . नहीं।

मनोहर

अस्पताल क्यों गई ? नहीं जाती तो मा के पास चली जाती न ?

आशादेवी

हाँ, तब तो चली जाती...लेकिन...

मनोहर

फिर जहर खा लेना अस्पताल न जाना ! मुझे भी जहर देना... मैं भी चलूँगा।

आशादेवी

तुम्हें ? हे भगवान ! (धीरे-धीरे उसकी देह पर हाथ फेरने लगती है। सीढ़ी पर किसी के पैरों की आवाज़ होती है।)

मनोहर

(चौक कर) आ रहे हैं ...बाबूजी...आ रहे हैं...छोड़ो ..... (छुड़ा कर भाग जाता है।)

डाक्टर

(सीढ़ी पर) मनोहर ! चलो।

मनोहर

नहीं...नहीं ..नीचे...

[डाक्टर का प्रवेश। डाक्टर केवल एक चदरा डाले हैं]

डाक्टर

(आशा के पास जाकर) यहाँ बैठी हैं...सुना था...सो रही हैं। (आशा सिर नीचे कर चुपचाप बैठी रहती है। छत पर से दो कुर्सियाँ लाकर कमरे में रखते हुए) बैठिए। (आशा फिर भी नहीं उठती।) बैठिए, कुछ कहना है।

आशादेवी

(उसी तरह नीचे बैठी हुई) अब कुछ न कहिए।

डाक्टर

बस यही आखिरी बार।

आशादेवी

अच्छा कहिए।

डाक्टर

(उसका हाथ पकड़ कर उठाते हुए) बैठिए यहाँ तब...

आशादेवी

(कुर्सी पर बैठ कर) क्या कहेंगे अब ?

डाक्टर

सुनिये...आपने जहर खाकर मेरी आत्मा को साफ कर दिया है। बहुत दिनों की बुराई निकल गई। अब मैं मनुष्य हूँ। लेकिन मेरी मनुष्यता में अभी एक कमी है।

आशादेवी

वह क्या ?

डाक्टर

आपकी माफी...मुझे माफ कर दीजिए। मैंने आपके साथ . (उनका स्वर काँपने लगता है)

आशादेवी

(प्रसन्न होकर) सच्चे दिल से कह रहे हैं...डाक्टर साहब ?

डाक्टर

हाँ...जहाँ तक इस जीवन में संभव है। मैंने कितने बुरे काम किए ओफ। (फिर भी उनका स्वर काँपने लगता है।)

आशादेवी

(कुछ सोच कर) लेकिन अभी यह नहीं हो सकता। मैं अभी आपको माफ करने की...मुझे अभी अधिकार नहीं कि आपको माफ़ कर सकूँ। मुझे भी मनुष्य बन लेने दीजिए।

डाक्टर

वह कब ?

आशादेवी

अभी...आज ही...इसी रात को। अगर वे मुझे क्षमा कर दें तो...(कुछ सोच कर) तो मैं भी मनुष्य बन जाऊँ। डाक्टर साहब वे मेरे ईश्वर हैं...देवता हैं...उनको पाने के लिये ..लेकिन नहीं मैं उन्हें अपवित्र नहीं करूँगी।

डाक्टर

(एकाएक कॉप कर) लेकिन वह कैसे...कैसे...हो सकेगा वह...?

आशादेवी

मैं उनसे सब कह दूँगी...साफ-साफ।

डाक्टर

ऐं सब कह देगी ? (तेजी से सांस लेने लगते हैं)

आशादेवी

(उनका हाथ अपने हाथ मे लेकर) घबड़ाइए मत वे गगा की तरह सब कुछ धो देंगे। वही केवल...वही...और कोई यह दाग धो नहीं सकता।

डाक्टर

लेकिन—(कुछ सोच कर) उनका विश्वास...कितना ज़्यादा...नहीं ...नहीं, नहीं वह तो मेरा मरना होगा।

आशादेवी

तब...

डाक्टर

मैं भाग जाऊँगा...जहाँ फिर कभी उनके सामने न आ सकूँ आज की रात नहीं...आज की रात नहीं...कल मैं कहीं जाऊँगा। (उसकी ओर देखते हुए) मेरी रक्षा कीजिए...कल ..कल...कल कह दीजिएगा। ओफ! जब वे मेरी ओर देखेंगे। आज नहीं...कल...उनकी आँखों से आग निकलेगी...मैं जलने लगूगा...आज नहीं...आज नहीं...(स्वर के साथ ही साथ उनका सारा शरीर कॉपने लगता है।)

आशादेवी

हाँ...हाँ...क्या कर रहे हैं ? हम दोनों की मुक्ति हो नहीं सकती, जब तक कि हमारा पाप उनके सामने खुल न जाय। डाक्टर साहब वे देवता हैं...आपने उन्हें पहचाना नहीं।

डाक्टर

हो सकता है...शायद हैं भी। लेकिन मैं उनके सामने खड़ा नहीं हो सकूंगा। मैं हिम्मत नहीं कर सकता।

आशादेवी

तब तो अभी आप मनुष्य नहीं हुए। मनुष्य का हृदय इतना कमज़ोर नहीं होता...जो अपना पाप न सँभाल सके।

डाक्टर

[कुर्सी पर झुक कर हाथों में अपना मुँह छिपा लेते हैं]

आशादेवी

(उनकी ओर देखती हुई) डाक्टर साहब!

(डाक्टर उसी तरह चुपचाप खड़े रहते हैं)

आशादेवी

देखिए भी इधर।

(डाक्टर फिर भी कोई उत्तर नहीं देते।)

आशादेवी

वाह! (उनकी ओर ध्यान से देखने लगती है)

डाक्टर

(आशा की ओर देखते हुए) अभी नहीं...अभी मेरा हृदय इसके लिये तैयार नहीं है।

आशादेवी

(सिर हिलाती हुई) अभी तैयार नहीं है...तब आप इसी तरह नरक में पड़े रहेंगे। उस पाप को धोकर सदैव के लिये सिर ऊँचा क्यों नहीं कर लेते? घड़ी भर की तकलीफ और फिर मुक्ति...कितनी सुदर चीज़...उसके लिये . उसके लिये...यह कमज़ोरी?

डाक्टर

(विक्षिप्त होकर कमरे में टहलते हैं—बाहर छत पर जाते हैं। आशा उठ कर खड़ी होती है—धीरे-धीरे चारपाई पर जाकर लेट जाती

है। थोड़ी देर तक सन्नाटा रहता है।)

[डाक्टर का प्रवेश]

डाक्टर

(आशा की चारपाई के पास पहुँच कर) तो मैं जा रहा हूँ...कल कोई नहीं जानेगा . मैं कहाँ रहूँगा। (जाना चाहते हैं)

आशादेवी

डाक्टर साहब ..एक बात और...सुनिए. .सुनिए...नहीं लौटेंगे ?

डाक्टर

(उसके पास आकर) क्या है ? (रूखे स्वर में) मैं अब यहाँ ठहर नहीं सकता।

आशादेवी

मुझे छोड़ कर चले जाएँगे ?

डाक्टर

इसका मतलब ?

आशादेवी

यह आपसे हो सकेगा ?

डाक्टर

मैं नहीं समझता।

आशादेवी

अपने हृदय से पूछिए।

डाक्टर

वह तो बेहोश है।

आशादेवी

वह बोल रहा है...आप सुन नहीं पाते।

डाक्टर

अच्छा यही सही.

आशादेवी

इतनी रुखाई ?

डाक्टर

आप चाहती क्या हैं ?

आशादेवी

मैं ?

डाक्टर

(रूखे स्वर में) जी हाँ आप।

आशादेवी

मैं चाहती हूँ कि हम दोनों पापी प्राणी...एक साथ...

डाक्टर

मैं समझ नहीं रहा हूँ।

आशादेवी

(चारपाई से उतर कर खड़ी होती है) किस तरह समझाऊँ श्रीमन्!

डाक्टर

मुझे क्या मालूम ?

आशादेवी

अच्छा तो सुनो (निस्संकोच) मैं चाहती हूँ कि जिस तरह हमारा पाप एक है...उसी तरह हमारा जीवन भी एक हो जाय। तुमने कभी मुझसे कहा था कि मेरे लिये तुम पहले पुरुष हो। उस समय मैं तुमको घृणा करती थी...आज मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ। तुम मेरे लिये पहले पुरुष हो . यह सच है। अब तुम मेरे लिये अंतिम पुरुष भी रहो। मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ...(उनका हाथ पकड कर) तुम मेरे प्रियतम...

डाक्टर

हूँ...

आशादेवी

क्या सोच रहे हो (उसके कंधे पर हाथ रखती है) बोलो ?

डाक्टर

सोच रहा हूँ...दुनिया वही है या नहीं...जो कल थी। आज से दो महीने पहले थी।

आशादेवी

नहीं...वह नहीं है......आज से दस मिनट पहले जो दुनिया थी, वह नहीं है।

डाक्टर

लेकिन हम लोग साथ रहेंगे कैसे ? (कुछ सोचने लगता है)

आशादेवी

हम लोग विवाह करेंगे . तुम भी अविवाहित हो और मैं भी .

डाक्टर

लोग क्या कहेंगे ?

आशादेवी

हँसी उड़ाएँगे . बदनामी करेंगे।

डाक्टर

तब ?

आशादेवी

तब क्या ? कुछ नहीं। हमारी अपनी ज़िंदगी रहेगी। कोई क्या कहता है...इसकी चिंता हम लोग नहीं करेंगे। हम लोग तो सचमुच बुरे हैं...कहने वाले तो उनको भी बुरा कहते हैं . जो बुराई जानते ही नहीं...जैसे शर्मा जी को। मेरे लिये वे इतने बदनाम हुए। किसको पता है कि आज तक उन्होंने मेरी परछाई भी नहीं छुई।

डाक्टर

सचमुच ?

आशादेवी

आश्चर्य क्या है ?—मैं पहले कह चुकी हूँ, वे देवता हैं। अगर वे मनुष्य होते...तब तो मैं इतने नीचे नहीं गिरती। मैं चाहती ही रह गई

कि वह एक बार मेरी ओर देख कर मुस्करा दे.. या एक बार मेरी कोई उँगली भी दबा दे। उन्होंने न मालूम कै बार मेरा हाथ पकड़ा होगा। मैं काँप उठती थी...लेकिन उन पर कोई असर नहीं जैसे पत्थर के हाथ में मेरा हाथ हो। इसीलिये वे देवता हैं।

डाक्टर

हूँ...ऐसा है ? सचमुच...देवता हैं। (जैसे कुछ सुन कर) आ रहे हैं...मैं जा रहा हूँ।

[डाक्टर का तेजी से प्रस्थान]

आशादेवी

(इधर-उधर बेचैन होकर टहलती है। कभी कुर्सी पकड़ कर खड़ी होती है, तो कभी दरवाज़ा। कभी दीवाल पर सिर टेकती है। कमरे के बीच में कुर्सी के सहारे खड़ी होकर) मुक्ति ? (सिर हिला कर) नहीं मृत्यु ?

[उमाशंकर का प्रवेश]

उमाशंकर

कैसी तबियत है ?

आशादेवी

(मुस्करा कर) सब आपकी कृपा

उमाशंकर

(संदेह से उसकी ओर देखते हैं) गर्मी ज़्यादा तो नहीं मालूम होती ?

आशादेवी

(मीठे स्वर में) जी नहीं . अब अच्छा है।

[डाक्टर और देवकीनंदन का प्रवेश]

डाक्टर

तो आप सचमुच उस बेचारे को बरख़ास्त करेंगे ?

उमाशंकर

डाक्टर साहब ! मैं कोई बात झूठ मूठ नहीं कहता। इसकी आदत

मुझे नहीं है। मुरारीसिंह का काम है लड़कों को पढ़ाना। चुनाव में आंदोलन करना नहीं। मैं जानता हूँ उन्होंने मेरे लिये बड़ी कोशिश की। लेकिन मैं इसके लिये ईनाम नहीं दूँगा।

देवकीनंदन

इस बार क्षमा तो कर सकते हैं।

उमाशंकर

हाँ, अगर वह मेरी अपनी बुराई हो। सिद्धांत की बुराई मैं नहीं सह सकता।

डाक्टर

लेकिन ..

उमाशंकर

(रोक कर) चुप रहिए। इस बारे में मैं और कुछ कहना सुनना नहीं चाहता। मैंने कह दिया। कल मैं उन्हें बरख़ास्त करूँगा। आप लोग जाइए। मैं बहुत थक गया हूँ। बोलने की तबियत नहीं चाहती।

[डाक्टर और देवकीनंदन का प्रस्थान]

आशादेवी

डाक्टर साहब थोड़ी देर नीचे ठहरिए! (उमाशंकर की ओर देख कर) मुझे भी कुछ कहना है!

उमाशंकर

अब आज नहीं कल...

आशादेवी

आज ही...

उमाशंकर

आज नहीं ..मैं...

आशादेवी

मैं अब रुक नहीं सकती।

उमाशंकर

(संदेह से उसकी ओर देखते हुए) आज तो क्षमा...

आशादेवी

जी नहीं...बिल्कुल नहीं। मैं मरी जा रही हूँ। उस बोझ को मैं आज हलका करूँगी।

उमाशंकर

अच्छा . कहो।

आशादेवी

इस तरह नहीं। (उमाशंकर का हाथ पकड़ कर) यहाँ . इस जगह ...इस कुर्सी पर बैठो। मैं जो कह रही हूँ...वह ऐसी बात नहीं है... जिसे तुम खड़े-खड़े सम्हाल सको। (उन्हें कुर्सी के पास ला कर) बैठो। मेरे देवता . आज मैं तुम्हारी दुनिया उलट दूँगी।

उमाशंकर

(कुर्सी पर बैठते हुए) तुम्हें हो क्या गया? पागल हो रही हो क्या?

आशादेवी

बिल्कुल नहीं . आज तो अभी होश में आ रही हूँ। तीन महीने के पागलपन के बाद।

उमाशंकर

कहो भी क्या है?

आशादेवी

(कुर्सी पर बैठते हुए . उनका हाथ अपने हाथ में लेकर) तैयार हो जाओ सुनने के लिये।

उमाशंकर

मालूम होता है...कुछ कहना नहीं है।

आशादेवी

मनोहर की मा...कैसे...मरी थी...? (रुक कर) जानते हो?

उमाशंकर

दो वर्ष तपेदिक से बीमार थी ..

आशादेवी

लेकिन वह तपेदिक से मरी नहीं।

उमाशंकर

(संदेह से) तब ?

आशादेवी

(उनकी ओर एकटक देखती हुई) मैंने...उसे...जहर दिया था।

उमाशंकर

(उठते हुए) ऐं ?

आशादेवी

(उनका हाथ खींचती हुई) बैठ कर . बैठ कर...सब सुन लो तब ..

उमाशंकर

(बैठते हुए) जहर दिया था ?

आशादेवी

हाँ...उसी में का बचा जहर मैंने कल खा लिया था ?

उमाशंकर

तो वह तपेदिक से नहीं मरी ? (आशा की ओर ध्यान से देखने लगते हैं)

आशादेवी

अभी नहीं...अभी मुझे दण्ड न दो...सुन लो सब...मेरे पापों का दण्ड हो नहीं सकता।

उमाशंकर

लेकिन जहर दिया क्यों ?

आशादेवी

तुम्हारे लिये। मैं तुम्हें प्रेम करती थी।

उमाशंकर

इसीलिये उसे जहर दिया ?

आशादेवी

हाँ मैं चाहती थी...मेरे प्रेम में कोई हिस्सेदार न बने। मैंने अपना हृदय निकाल कर तुम्हारे चरणों में रख दिया। लेकिन तुमने उसका मान नहीं किया। जिस समय मैं तुम्हारे प्रेम के लिये . तुम्हारी मुस्कराहट के लिये...तुम्हारे स्पर्श के लियें या स्त्री अपने पुरुष से... जो कुछ ..चाहती है ..उसके लिये मरी जा रही थी...उस समय तुम मेरा सम्मान करते थे ..मेरी...प्रशंसा करते थे। मेरे सामने तुम उस तरह जाते थे...जैसे, लोग...अदालत में जाते हैं।

उमाशंकर

बस अब अधिक नहीं। (सिर हिलाते हैं)

आशादेवी

अभी बहुत। जो चाहो दण्ड दो ..लेकिन सब सुन कर। मैं अपने पाप की पूरी सज़ा चाहती हूँ। तुम सो जाते थे...और मैं रात भर इस करवट से उस करवट.. सोचती थी अब आते हो...अब आते हो... बिल्ली की आवाज़ भी तुम्हारे पैरों की आवाज़ मालूम होती थी...मेरा हृदय काँपने लगता था...शरीर काँपने लगता था...एक-एक रोएँ खड़े हो जाते थे...सिर से पसीना चल पड़ता था ! (उसका स्वर काँपने लगता है।)

उमाशंकर

बस...सुनो भी...

आशादेवी

नहीं पहले मुझे कह लेने दो। कोई रात ऐसी नहीं बीती कि मैं तुम्हारी चारपाई के पास घटों खड़ी न रही हूँ.. तुम्हारे पैताने अपना सिर रख देती थी...जब कभी तुम्हारा पैर मेरे मुँह पर पड़ जाता था... समझती थी वरदान मिल गया। पूजा सफल हो गई। कभी-कभी

तुम्हारे पैर की उँगलियों पर आँख रखकर पलकों से उन्हें दबाती थी। (पलकों को ज़ोर से दबाती है...आँखें बंद हो जाती हैं।)

उमाशंकर

तो तुमने मेरे लिये उसे जहर दे दिया। मेरे बच्चे को अनाथ कर दिया। उसकी तस्वीर लेकर रोता रहता है।

आशादेवी

हाँ. .मैंने समझा उसके मर जाने पर तुम्हें पा सकूँगी। लेकिन... (एकाएक फ़र्श पर बैठ कर उनके पैरों पर अपना सिर रख देती है।)

उमाशंकर

(उसके सिर पर हाथ रख कर) उठो मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ... आज से मेरे बच्चे की तुम्हीं मा हो। उठो ..(झुक कर उसे उठाते हैं।)

आशादेवी

(दो क़दम पीछे हट कर) उस लायक मैं अब नहीं हूँ . अगर मैं उस लायक होती...उसके बाद मैंने जो पाप किया...हाय !

उमाशंकर

(चौंक कर) उसके बाद जो पाप किया ?

आशादेवी

हाँ...डाक्टर से मैंने जहर लिया था...इसलिये कि वे तुम से कह न दें...उसे छिपाने के लिए मैंने उन्हें...अपनी पवित्रता...अपना शरीर...स्त्री का जो सब से बड़ा भरोसा है वही...अपना चरित्र दे दिया। हत्या से कहीं भयंकर पाप ..मैंने . व्यभिचार...डाक्टर के... साथ...

उमाशंकर

ऐं...डाक्टर के साथ ?

[तेज़ी से उठ कर बाहर जाते हैं—लालटेन लेकर अपने कमरे में प्रवेश करते हैं...और उसी क्षण हाथ में पिस्तौल लेकर निकलते हैं। आशा इसी बीच में दरवाजे पर जाकर खड़ी हो जाती है।]

उमाशंकर

हट जाओ . हट जाओ...मेरे साथ विश्वासघात।

आशादेवी

(छाती आगे की ओर बढ़ाती हुई) पहले मुझे मारो।

उमाशंकर

कह रहा हूँ...जाने दो...नहीं तो

आशादेवी

मैं भी तो कह रही हूँ...पहले मुझे मारो। उसी बेचारे ने विश्वास-घात किया है...मैंने नहीं? अगर विश्वासघात का दण्ड हत्या है तो पहले मुझे क्यों नहीं मारते?

उमाशंकर

तुम्हें नहीं मारूँगा।

आशादेवी

मुझे नहीं मारोगे और उसे मारोगे क्यों भगवान...ज़रा मेरी ओर देखो तो...

उमाशंकर

(उसकी ओर देखते हुए) कहो।

आशादेवी

हत्या करोगे?

उमाशंकर

हाँ...

आशादेवी

लेकिन् हत्या करने से भी बदला नहीं निकलेगा। मैं अब पवित्र नहीं हो सकती...अब तो मैं सदैव के लिये.. तुमसे अलग...

उमाशंकर

क्यों?

आशादेवी

तुम मेरे उपास्यदेव हो... ..तुम्हें छूने का भी अधिकार मुझे अब नहीं......और फिर मैं डाक्टर को प्रेम करने लगी हूं। मेरे लिये वही पहले पुरुष......

उमाशंकर

एँ (पिस्तौल दूर फेंक देते हैं) तुम उसे प्रेम करती हो? उस पापी को जिसने तुम्हारा सतीत्व...

आशादेवी

अभी मेरे साथ सतीत्व का सवाल नहीं था...मैं अविवाहित हूँ...

उमाशंकर

(कुर्सी पर बैठते हुए) हूँ......(कुर्सी पर सिर झुकाकर ऊपर छत की ओर देखने लगते हैं।)

आशादेवी

(उनके नज़दीक जाकर) तुम चाहो तो हम दोनों का पाप धो सकते हो...तुम पवित्र हो...गगा से भी बढ़कर...क्षमा करो...... आशीर्वाद दो। हम दोनों के हृदय से पाप निकल जाय और हम लोग साथ साथ......हम दोनों की ज़िंदगी...एक...

उमाशंकर

तुम्हारा मतलब क्या है?

आशादेवी

मैं डाक्टर के साथ रहूँगी...

उमाशंकर

किस तरह......?

आशादेवी

उनकी स्त्री बन कर। हम दोनों विवाह करेंगे। हम दोनों पाप में एक हुए थे...वह पाप मिट नहीं सकता...जब तक कि हम दोनों जीवन में एक न हो जायँ...पाप में...पुण्य में, सब में साथी...

उमाशंकर

(उद्वेग से) आशा !

आशादेवी

(काँपते हुए स्वर में) कहो देव !

उमाशंकर

(क्षण भर उसकी ओर देखकर...उसका मुँह लाल हो उठता है आँखों से चमक निकलने लगती है) लेकिन...मैं भी तुम्हें...प्रेम...

आशादेवी

हे ईश्वर ...कैसा था वह प्रेम भगवन . ? कैसा था ? जिसमें एक बार भी छाती नहीं धड़की। एकबार भी रोमाच नहीं हुआ। एक बार भी आँखें नहीं भीगीं ? (एकटक उमाशंकर की ओर देखने लगती है।)

उमाशंकर

उसी का दण्ड दे रही हो ? . .

आशादेवी

दंड ? (कुछ सोच कर) तुम्हें ? (उसका हाथ पकड़कर) नहीं...यह न सोचो।

उमाशंकर

तब क्या सोचूं। (निराश हो, उठते हैं।)

आशादेवी

तुम्हें दंड.. मैंने अपने इस जीवन का नाश किया है...किसी बहुत बड़ी आशा पर...उसके लिये...

उमाशंकर

वह क्या है ?

आशादेवी

दूसरे जन्म में तुम्हें पाना।

उमाशंकर

इस जन्म में छोड़कर ?

आशादेवी

यही तो मेरा त्याग है.. मैं अपने देवता को अपवित्र नहीं करूँगी।

[उमाशंकर उठकर बाहर छत पर जाते है। चुपचाप खड़े होकर ऊपर आकाश की ओर देखने लगते हैं। आशा वहीं कुर्सी पर बैठ जाती है]

आशादेवी

तो मैं जाती हूँ...

उमाशंकर

कहाँ ?

आशादेवी

अपने नए घर...अपने असली घर।

उमाशंकर

(लौटकर) कहाँ है असली घर ?

आशादेवी

डाक्टर के घर मे।...इस देव...मंदिर मे अब रहना...

उमाशंकर

(उसकी ओर देखते हुए) तो मैं अकेले रहूँगा ?

आशादेवी

(प्रसन्न होकर) हाँ.. देवता का स्वाभाव है, अकेले रहना.. गरोह बाँध कर तो भूत रहते हैं। (उठकर उमाशंकर के पैर पर अपना सिर रख देती है। क्षणभर उसी हालत मे उमाशंकर झुककर उसके सिर पर हाथ रखना चाहते है। लेकिन फिर हाथ खींचकर खड़े हो जाते हैं। आशा उठकर धीरे-धीरे सीढ़ी से नीचे उतर जाती है। उमाशंकर कई बार सिर हिलाते हैं उनकी आँखें बंद हो जाती है।)

[मनोहर का प्रवेश।]

उमाशंकर

(मनोहर को गोद में उठाकर उसका मुँह चूमते हुए) मेरे बच्चे (उसे छाती से लगाकर) आह ! तो यह मेरी मुक्ति...

परदा गिरता है ।